ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जत्थेदार बन्दा सिंह बहादुर

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

Website : www.sikhworld.info

नोटः यहां दी गई सारी जानकारी लेखक के अपने निजी विचार हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लेखक के विचारों से सहमत हों।

जत्थेदार बन्दा सिंह बहादुर

बन्दा सिंह बहादुर का जन्म 16 अक्टूबर 1670 ई० को जम्मू-कश्मीर के पुंछ जिले के एक गाँव रजौरी में हुआ। उनको बचपन का नाम लछमन दास था। आपके पिता रामदेव राजपूत डोगरे, स्थानीय जमींदार थे। जिस कारण आप के पास धन-सम्पदा का अभाव न था। आपने अपने बेटे लछमन दास को रिवाज़ के अनुसार घुड़सवारी, शिकार खेलना, कुश्तियाँ आदि के करतब सिखलाएं किन्तु शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

अभी लछमन दास का बचपन समाप्त ही हुआ था और यौवन में पदार्पण ही किया था कि अचानक एक घटना उनके जीवन में असाधारण परिवर्तन ले आई। एक बार उन्होंने एक हिरनी का शिकार किया। जिसके पेट में से दो बच्चे निकले और तड़प कर मर गये। इस घटना ने लछमनदास के मन पर गहरा प्रभाव डाला और वह अशांत सा रहने लगे। मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिए वह साधु संगत करने लगे। एक बार जानकी प्रसाद नामक साधु राजौरी में आया। लछमनदास ने उसके समक्ष अपने मन की व्यथा बताई तो जानकी प्रदास उसे अपने संग लाहौर नगर के आश्रम में ले आया। और उसने लछमन दास का नाम माधो दास रख दिया। क्योंकि जानकी दास को भय था कि जमींदार रामदेव अपने पुत्र को खोजता यहाँ न आ जाए। किन्तु लछमन दास अथवा माधो दास की मन का भटकना समाप्त नहीं हुआ। अत: वह शान्ति की खोज में जुटा रहा। लाहौर नगर के निकट कसूर क्षेत्र में सन् 1686 ईसवी की वैसाखी के मेले पर उन्होंने एक और साधु रामदास को अपना गुरू धारण किया और वह उस साधु के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर चले गये। बहुत से तीर्थो की यात्रा की किन्तु शाश्वत ज्ञान कहीं प्राप्त न हुआ। इस बीच पंचवटी में उसकी मुलाकात एक योगी औघड़नाथ के साथ हुई। यह योगी ऋद्धियों-सिद्धियों तथा तांत्रिक विद्या जानने के कारण बहुत प्रसिद्ध था। तंत्र-मंत्र तथा योग विद्या सीखने की भावना से माधोदास ने इस योगी की खूब सेवा की। जिससे प्रसन्न होकर औघड़ नाथ ने योग की गूढ़ साधनाएं व जादू के भेद उसको सिखा दिये। योगी की मृत्यु के पश्चात् माधोदास ने गोदावरी नदी के तट पर नंदेड़ नगर में एक रमणीक स्थल पर अपना नया आश्रम बनाया। यहाँ माधो दास ने ऋद्धि-सिद्धि अथवा जन्त्र-मन्त्र की चमत्कारी शक्तियाँ दिखा कर जन-साधारण को प्रभावित किया। जिससे स्थानीय लोग उन्हें मानने लगे और कुछ एक उनके शिष्य बन गये। जिससे माधोदास अभिमानी हो गया। वह प्रत्येक कार्य अपने स्वार्थ के लिए करने लगा। वह परोपकार का मार्ग भूल गया। अत: वह लोक भलाई के लिए कुछ भी न कर पाया बल्कि अपनी आत्मिक शक्ति का प्रदर्शन करके लोगों को भयभीत करने लगा जिससे लोग अभिशाप के भय से धन अथवा आवश्यक सामग्री इत्यादि आश्रम में पहुँचाने लगे। यदि कोई अन्य साधु इस क्षेत्र में आता तो माधो दास उसका अपमान करके उसे वहाँ से भगा देता। इस बात की चर्चा दूर दूर तक होने लगी कि माधोदास तपस्वी अभिमानी और हठी प्रवृत्ति का है, वह अन्य सन्तों की खिल्ली उड़ाता है। गुरूदेव ने इस चुनौती को स्वीकार किया और उसके आश्रम में जाकर उसे ललकारने के विचार से आश्रम की मर्यादा के विपरीत अपने शिष्यों को कार्य करने का आदेश दिया।

माधोदास से बंदा बहादुर

श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी दक्षिण भारत में गुरमति का प्रचार प्रसार करने के लिए विचरण कर आगे बढ़ रहे थे कि महाराष्ट्र के स्थानीय लोगों ने गुरूदेव को बताया कि गोदावरी नदी के तट पर एक वैरागी साधु रहता है जिसने योग साधना के बल से बहुत सी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त की हुई हैं। जिनका प्रयोग करके वह अन्य महापुरूषों का मजाक उड़ाता है। इस प्रकार वह बहुत अभिमानी प्रवृत्ति का स्वामी बन गया है। यह ज्ञात होने पर गुरूदेव के हृदय में इस चंचल प्रवृत्ति के साधु की परीक्षा लेने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अत: वह नादेड़ नगर के उस रमणीक स्थल पर पहुँचे, जहाँ इस वैरागी साधु का आश्रम था। संयोगवश वह साधु अपने आश्रम में नहीं था, उद्यान में तप साधना में लीन था। साधु के शिष्यों ने गुरूदेव का शिष्टाचार से सम्मान नहीं किया। इसलिए गुरूदेव रूष्ट हो गये और उन्होंने अपने सेवकों (सिक्खों) को आदेश दिया कि यहीं तुरन्त भोजन तैयार करो। इस कार्य के लिए यहीं आश्रम में बकरे झटका डालो। उनके आदेश का पालन किया गया। बकरों की हत्या देखकर वैरागी साधु के शिष्य बौखला गये किन्तु वे अपने को असमर्थ और विवश अनुभव कर रहे थे। सिक्खों ने उनके आश्रम को बलात् अपने नियन्त्रण में ले लिया था और गुरूदेव स्वयँ वैरागी साधु के पलंग पर विराजमान होकर आदेश दे रहे थे। वैरागी साधु के शिष्य अपना समस्त ऋद्धि-सिद्धि का बल प्रयोग कर रहे थे जिस से बलात् नियन्त्रकारियों का अनिष्ट किया जा सके; किन्तु वह बहुत बुरी तरह से विफल हुए। उनकी कोई भी चमत्कारी शक्ति काम नहीं आई। उन्होंने अन्त में अपने गुरू वैरागी साधु माधोदास को सन्देश भेजा कि कोई तेजस्वी तथा पराकर्मी पुरूष आश्रम में पधारे हैं जिनको परास्त करने के लिए हमने अपना समस्त योग बल प्रयोग करके देख लिया है परन्तु हम सफल नहीं हुए। अत: आप स्वयँ इस कठिन समय में हमारा नेतृत्त्व करें। संदेश पाते ही माधोदास वैरागी अपने आश्रम पहुँचा। एक आगन्तुक को अपने पलंग (आसन) पर बैठा देखकर, अपनी अलौकिक शक्तियों द्वारा पलंग उलटाने का प्रयत्न किया परन्तु गुरूदेव पर इन चमत्कारी शक्तियों का कोई प्रभाव न होता देख,माधो दास जान गया कि यह तो कोई पूर्ण पुरुष हैं, साधारण व्यक्ति नहीं। उसने एक दृष्टि गुरूदेव को देखा - नूरानी चेहरा और निर्भय व्यक्ति। उसने बहुत विनम्रता से गुरूदेव से प्रश्न किया - आप कौन हैं? गुरूदेव ने कहा - मैं वही हूँ जिसे तू जानता है और लम्बे समय से प्रतीक्षा कर रहा है।

माधोदास - तभी माधोदास अन्तर्मुख हो गया और अन्त:करण में झाँकने लगा। कुछ समय पश्चात् सुचेत हुआ और बोला - आप गुरू गोबिन्द सिंह जी तो नहीं?

गुरूदेव - तुमने ठीक पहचाना है मैं वही हूँ।

माधो दास – आप इधर कैसे पधारे? मन में बड़ी उत्सुकता थी कि आप के दर्शन करूँ किन्तु कोई संयोग ही नहीं बन पाया कि पँजाब की यात्रा पर जाऊँ। आपने बहुत कृपा की जो मेरे हृदय की व्यथा जानकर स्वयँ पधारे हैं।

गुरूदेव – हम तुम्हारे प्रेम में बाँधे चले आये हैं अन्यथा इधर हमारा कोई अन्य कार्य नहीं था।

माधो दास – मैं आप का बंदा हूँ। मुझे आप सेवा बताएं और वह गुरू चरणों में दण्ड्वत प्रणाम करने लगा।

गुरूदेव – उसकी विनम्रता और स्नेहशील भाषा से मंत्रमुग्ध हो गये। उसे उठाकर कंठ से लगाया और आदेश दिया – यदि तुम हमारे बंदे हो तो फिर सँसार से विरक्ति क्यों? जब मज़हब के जनून में निर्दोष लोगों की हत्या की जा रही हो, अबोध बालकों तक को दीवारों में चुना जा रहा हो। और आप जैसे तेजस्वी लोग हथियार त्याग कर सन्यासी बन जायें तो समाज में अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध आवाज कौन बुलंद करेगा? यदि तुम मेरे बंदे कहलाना चाहते हो तो तुम्हें समाज के प्रति उत्तरदायित्त्व निभाते हुए कर्त्तव्यपरायण बनना ही होगा क्योंकि मेरा लक्ष्य समाज में भ्रातृत्त्व उत्पन्न करना है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब स्वार्थी, अत्याचारी और समाज विरोधी तत्त्व का दमन किया जाये। अत: मेरे बंदे तो तलवार के धनी और अन्याय का मुँह तोड़ने का संकल्प करने वाले हैं। यह समय सँसार से भाग कर एकान्त में बैठने का नहीं है। तुम्हारे जैसे वीर और बलिष्ठ योद्धा को यदि अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़े तो चूकना नहीं चाहिए क्योंकि यह बलिदान घोर तपस्या से अधिक फलदायक होता है।

माधोदास ने पुन: विनती की कि मैं आपका बंदा बन चुका हूँ। आपकी प्रत्येक आज्ञा मेरे लिए अनुकरणीय है। फिर उसने कहा – मैं भटक गया था। अब मैं जान गया हूँ, मुझे जीवन चरित्र से सन्त और कर्त्तव्य से सिपाही होना चाहिए। आपने मेरा मार्गदर्शन करके मुझे कृत्तार्थ किया है जिससे मैं अपना भविष्य उज्ज्वल करता हुआ अपनी प्रतिभा का परिचय दे पाउँगा।

गुरूदेव, माधो दास के जीवन में क्रान्ति देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे गुरूदीक्षा देकर अमृतपान कराया। जिससे माधोदास केशधरी सिंह बन गया। पाँच प्यारों ने माधोदास का नाम परिवर्तित करके गुरूबख्श सिंह रख दिया। परन्तु वह अपने आप को गुरू गोबिन्द सिंह जी का बन्दा ही कहलाता रहा। इसी लिए इतिहास में वह बंदा बहादुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुरूदेव को माधोदास (बंदा बहादुर) में मुग़लों को परास्त करने वाला अपना भावी उत्तराधिकारी दिखाई दे रहा था। अत: उसे इस कार्य के लिए प्रशिक्षण दिया गया और गुरू इतिहास, गुरू मर्यादा से पूर्णत: अवगत कराया गया। कुछ दिनों में ही उसने शस्त्र विद्या का पुन: अभ्यास करके फिर से प्रवीणता प्राप्त कर ली। जब सभी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी तो गुरूदेव ने उसे आदेश दिया – 'कभी गुरू पद को धारण नहीं करना में न बंधना, अन्यथा लक्ष्य से चूक जाओगे। पाँच प्यारों की आज्ञा मानकर समस्त कार्य करना। बंदा बहादुर ने इन उपदेशों के सम्मुख शीश झुका दिया। तभी गुरूदेव ने अपनी खड़ग (तलवार) उसे पहना दी। किन्तु सिक्ख इस कार्य से रूष्ट हो गये। उनकी मान्यता थी कि गुरूदेव की कृपाण (तलवार) पर उनका अधिकार है, वह किसी और को नहीं दी जा सकती। उन्होंने तर्क रखा कि हम आपके साथ सदैव छाया की तरह रहे हैं जब कि यह कल का योगी आज समस्त अमूल्य निधि का स्वामी बनने जा रहा है।

गुरूदेव ने इस सत्य को स्वीकार किया। खड़ग के विकल्प में गुरूदेव जी ने उसे अपने तरकश में से पाँच तीर दिये और वचन किया जब कभी विपत्तिकाल हो तभी इनका प्रयोग करना तुरन्त सफलता मिलेगी। आशीर्वाद दिया और कहा – जा जितनी देर तू खालसा पंथ के नियमों पर कायम रहेगा। गुरू तेरी रक्षा करेगा। तुम्हारा लक्ष्य दुष्टों का नाश और दीनों की निष्काम सेवा है, इससे कभी विचलित नहीं होना। बन्दा सिंह बहादुर ने गुरूदेव को वचन दिया कि वह सदैव पंच प्यारों की आज्ञा का पालन करेगा। गुरूदेव ने अपने कर-कमलों से लिखित हुक्मनामे दिये जो पँजाब में विभिन्न क्षेत्रों में बसने वाले सिक्खों के नाम थे जिसमें आदेश था कि वह सभी बन्दा सिंह की सेना में सम्मिलित हो कर दुष्टों को परास्त करने के अभियान में कार्यरत हो जाएं और साथ ही बन्दा सिंह को खालसे का जत्थेदार नियुक्त करके 'बहादुर' खिताब देकर नवाज़ा और पाँच प्यारों – भाई विनोद सिंह, भाई काहन सिंह, भाई बाज सिंह, भाई रण सिंह और रामसिंह की अगुवाई में पँजाब भेजा। उसे निशान साहब (झंडा) नगाड़ा और एक सैनिक टुकड़ी भी दी; जिसे लेकर वह उत्तरभारत की ओर चल पड़ा।

बंदा सिंह का पंजाब की ओर प्रस्थान

श्री गुरु गोबिंद सिंह जी से विदा होकर बंदा सिंह पंजाब की ओर चल पड़ा। रास्ते में जत्थे के सिंघों ने उसे गुरुदेव जी की तथा अन्य पूर्व गुरुजनों के वृतांत सुनाये जिस में श्री गुरु तेग बहादुर जी की शहादत भी थी। बन्दा सिंह इन वृतांतों को सुनकर प्रतिद्वन्दी पक्ष से प्रतिशोध लेने के लिए व्याकुल हो उठा। वह भावुकता मे कभी-2 अवेश मे भी आ जाता। इस प्रकार उस का क्रोध वीरता मे बदल गया। वह जल्दी अपनी मंजिल पर पहुचना चाहता था और वह प्रतीक्षा करने लगा कि उस के पास कब पर्याप्त संख्या में सेना हो जिस से युद्ध प्रारम्भ किये जा सके। किन्तु अभी उसके पास धरोहर के रूप में एक निशान साहब (झंडा), एक नगाड़ा, एक छोटी सैनिक टुकड़ी, एक पंजाब के सिंघों के नाम हुक्मनामा और पांच तीर ही थे।

बंदा सिंह को रास्ते में खर्च के लिए धन की आवश्यकता अनुभव हुई। उसे गुरुदेव का वचन स्मरण हो आया। जब कभी कठनाई का

अनुभव हो तो पांच प्यारे सामूहिक रूप मे प्रार्थना करना, कार्य सिद्ध होगा। बस, बंदा सिंह ने अपनी बात साथी सिंघों के बताई, उन्होंने उसी क्षण मिलकर गुरू चरणों में प्रार्थना की, आप ने वचन दिया था "हाथ खालसे का और खजाना गुरू का रहेगा"। अब वह समय आ गया है हमें धन की अति आवश्यकता है। इधर सिंह अरदास समाप्त कर के हटे ही थे कि उधर एक व्यक्ति ने तुरन्त संदेश दिया। एक वंजारा आप की खोज कर रहा है उसे मालुम हुआ है आप गुरू के बंदे हैं। वह अपना दशमांश (आय का दसवा भाग) गुरू घर के कार्य कि लिए जमा करवाना चाहता है। यह सुनते ही सभी सिक्खों का विश्वास गुरू वचनों पर और दृढ हो गया। उस वंजारे सिक्ख ने बंदा सिंह को 500रू दिये और कहा-यह राशी गुरू की अमानत है, उन्हें पंहुचा दे। इस प्रकार बंदा सिंह पंजाब की ओर बढ़ता चला गया।

रास्ते मे ग्वालियर नगर के निकट एक गांव के लोग बहुत भय-भीत दिखाई दिये, वे लोग बंदा सिंह और उसके जत्थे को डाकू समझ रहे थे। बंदा सिंह ने उन्हें विश्वास में लिया और कहा "हम तो यात्री है, पंजाब जा रहे है, हम से भय-भीत होने की आवश्यकता नहीं बल्कि हम तो निर्बलों के रक्षक है और उन की सहायता करने वाले है, जब चाहे परीक्षा ले सकते हो।" इस पर गांव का मुखिया बोला हमें डाकूओं ने चुनौती दे रखी है, वे कभी भी इस क्षेत्र पर आक्रमण कर सकते है। इस लिए हम गांव छोड़ भाग रहे है। यह सुनकर बंदा सिंह बोला यदि आप लोग धैर्य रखे और हमारे कहे अनुसार आचरण करें तो हम आप लोगों को सदैव के लिए डाकूओं के भय से मुक्ति दिलवा सकते हैं। गांव के मुखिया ने तुरन्त गांव की पंचायत बुलाई और जत्थेदार बंदा सिंह के प्रस्ताव पर विचार होने लगा। गांव वालों ने बंदा सिंह से पूछा हमें क्या करना होगा? इस पर बंदा सिंह ने कहा-हम तुम्हारे लिए डाकूओं का सामना करेगें केवल तुम लोग घरेलु रक्षक सामग्री :-कुल्हाडी, लाठी, भाला इत्यादि लेकर हमारी दूसरी पंक्ति में डटे रहना और डाकूओं पर धावा बोलने की गर्जना करते रहना बाकी हम सम्भाल लेगें।

जत्थेदार बंदा सिंह ने सर्वप्रथम इसी गांव में मोर्चा लगा लिया और गांव वालों को सैनिक प्रशिक्षण देने लगे। प्रशिक्षण प्राप्त करते ही स्थानीय युवकों का आत्म विश्वास जागृत हो उठा और वह अदम्य साहस से जी उठे और वे डाकूओं के आने की प्रतीक्षा करने लगे। देखते ही देखते वह समय भी आ गया। डाकूओं ने निर्धारित समय गांव पर धावा बोल दिया। किन्तु इस बार उनकी कल्पना के विपरीत कड़ा प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। जत्थेदार बंदा सिंह ने बहुत सतर्कता से एक चक्रव्युह की रचना कर ड़ाली थी। उसने सभी गांव के घरों में समान्य रूप से प्रकाश का प्रबन्ध कर दिया किन्तु घरों को खाली करवा लिया और स्वयं गांव की जनता सहित अंधकार की ओट में छिप गये। जैसे ही डाकूओं ने गांव के घरों पर आक्रमण किया उसी समय पीछे से उन डाकूओं को घेर लिया गया। इस युक्ति से कोई भी डाकू वापस भाग नहीं सका, वहीं ललकार कर सिंघों तथा गांव वालों ने ढेर कर दिये। और उनके शस्त्र-अस्त्र तथा घोड़े इत्यादि कब्जे में ले लिये। यह बहुत बड़ी विजय थी, जिस से उत्साहित होकर स्थानीय युवक बंदा सिंह की सेना में भर्ती होने का, उस से आग्रह करने लगे। इस सफलता ने सभी का मनोबल बढ़ा दिया था। बंदा सिंह ने इस अवसर से लाभ उठते हुए ह्रष्ट पुष्ट युवकों को अपनी सेना का सहर्ष अंग बना लिया और आगे बढने लगे। झांसी क्षेत्र के निकट आपने पड़ाव डाला। भोजन व्यवस्था करते समय एक स्थान पर चूल्हा बनाते समय नीचे से गढा हुआ खज़ाना मिल गया। अनुमान लगाया गया कि यह खज़ाना किसी डाकू गिरोह द्वारा धरती मे गाढ कर छिपाया गया था। खज़ाना मिलने पर बंदा सिंह के लश्कर की आर्थिक दिशा बहुत मजबूत हो गई। इस प्रकार आगे बढते हुए आगरा क्षेत्र के निकट एक दिन रास्ते में एक वंजारों के काफिले से सामना हो गया। वंजारों का काफिला बंदा सिंह की पलटन को देखकर भयभीत हो गये और इधर-उधर शरण-स्थलों में छिपने लगे। बंदा सिंह इस का कारण जानना चाहते थे अत: उन्होंनें उनमें से कुछ को पकड़ लिया और पूछ-ताछ की। प्रारम्भिक पूछ-ताछ से मालुम हुआ वे लोग बंदा सिंह के सैनिकों को मुग़ल सेना समझ रहे थे क्योंकि मुग़ल सैनिकों का व्यवहार वंजारों के प्रति अच्छा नहीं रहता था। वह इन का शोषण करते और धमकाते रहते थे। जब वंजारों को ज्ञात हुआ जिन्हें वे शाही सैनिक समझ रहे थे। वे तो वास्तव में श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के सिक्ख है, तो वे सब एकत्र होकर जत्थेदार बंदा सिंह की शरण मे उपस्थित हुए और उन्होंने बताया कि वे नानक पंथी हैं किन्तु अपनी पहचान छिपाए रहते हैं अन्यथा सत्ताधारियों के क्रोध का शिकार बन जाते हैं। इस प्रकार जत्थेदार बंदा सिंह को एक शुभ अवसर हाथ लगा, उसने अपनी संख्या बढ़ाने के विचार से वंजारों के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा और उन्हें अपना लक्ष्य बताया कि हमारा एक मात्र उददेश्य है अत्याचारी शासकों से बदला लेना। यदि तुम लोग हमारे साथ सहयोग करो तो यह काम बहुत सरल हो सकता है। बंदा सिंह ने उन्हें बताया हम चाहते हैं कि तुम लोग अपने युवकों को हमारी सेना में भर्ती कराओ और हमें रसद तथा अस्त्र-शस्त्र मुहय्या कराते रहें। जिस का हम नकद भुगतान करेंगें। वंजारे प्रसन्न हो उठे, वे इसी प्रकार की संधि चाहते थे।

उन दिनों मध्य भारत के विभिन्न क्षेत्र में थे वंजारे (नानक पंथी) लोग दूर दराज के क्षेत्रों मे फैल कर आदिवासियों जैसा जीवन व्यतीत कर रहे थे। इन में अधिकांश सीकलीगर थे जो शस्त्र निर्माण कर कार्य में दक्ष थे और वे अतीत में श्री गुरू हरिगोबिन्द साहब तथा गुरू गोबिंद सिंह जी को शस्त्रों की खेप भेजते ही रहते थे।

इस समय बंदा सिंह ने वंजारा बिरादरी को विश्वास में ले लिया था और युवकों को अपनी सेना में भर्ती करना प्रारम्भ कर दिया। देखते ही देखते बंदा सिंह का सैनिक बल, विशाल रूप धारण करने लगा और वह धीरे-धीरे आगे बढते हुए रोहतक जिले होता हुआ गांव सहेरी और गांव खण्डां के मध्य में पड़ाव डाल कर बैठ गया। उन दिनों इस समस्त क्षेत्र को बांगर देश कहते थे। अब बंदा सिंह के समक्ष उस का मुख्य लक्ष्य सरहिन्द नगर बहुत निकट था। इस समय उस के सामने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योजना बद्ध कार्यक्रम तैयार करना और पंजाब में बसे विभिन्न क्षेत्रों के सिक्खों को गुरूदेव जी का हुक्मनामा भेजना था जिस के मिलने पर गुरूदेव के समर्पित अनुयायी सिर पर कफन बांध कर उस को सहयोग देने काफलों के रूप मे एकत्र हो जाये।

बंदा सिंह ने अपने साथी सिक्खों से कहा आप अपने-अपने घर जाये और सभी निकटवर्ती क्षेत्रों में गुरूदेव का हुक्मनामा सुनाये, और

बिखरे हुए सिक्खों को एकत्र करने का अभियान चलाए। जब तक पंजाब के सिक्ख इस अभियान में सम्मिलित नहीं होते तब तक मुख्य लक्ष्य पर धावा नहीं बोला जा सकता।

इस पर सिंघों ने कहा- हमें घर जाने के लिए कुछ धन चाहिए, हम खाली हाथ नहीं जाना चाहते। तभी सूचना मिली कि लाहौर से दिल्ली शाही खज़ाना जा रहा है। बस फिर क्या था बंदा सिंह ने तुरन्त शाही खज़ाना लूटने का आदेश दे दिया, देखते-ही-देखते उस के सैनिकों ने जरनैली सड़क को घेर कर शाही खज़ाना लूट लिया यह प्रथम शाही सेना से मुठभेड़ थी। शाही खज़ाना हाथ लगते ही बंदा सिंह ने घर जाने वाले सिक्खों से कहा-खज़ाना तुम्हारे सामने है जितनी इच्छा हो ले जाओ, इस बात पर सभी रीझे और सन्तुष्ट हो कर घरों को चले गये।

इन दिनों सम्राट बहादुर शाह राजपुतों के युद्ध में उल्झा हुआ था। दिल्ली में कोई साहसी उत्तरदायित्व निभाने वाला नहीं था। अत: खज़ाना लूट जाने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। बहुत बड़ी धन राशी हाथ लगने से बंदा सिंह ने अपनी सेना का गठन प्रारम्भ कर दिया और सभी प्रकार की युद्ध सामग्री खरीद ली। सहेरी-खण्डां गांवो का मध्य स्थल उस की सैनिक तैयारियों के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ। दूसरी तरफ जब बंदा सिंह से विदा लेकर सिंह अपने घरों में पहुचे तो उन के परिवारों ने गुरूदेव की कुशलक्षेम पूछी। इस पर सिंघों ने कह दिया गुरूजी ने अपने एक बंदे को भेजा है जिसके नेतृत्व में हमें संगठित होने का आदेश है और वह उनके पुत्रों की हत्या अथवा अन्य हत्याओं का प्रतिशोध दुष्टों से लेगा। बस फिर क्या था यह संदेश प्राप्त करते ही गांव-गांव से युवकों के हृदय में गुरू के नाम पर मर मिटने की इच्छा जागृत हो गई। वे इक्ट्ठे हो कर काफिलों के रूप में बंदा सिंह के पास गांव सहेरी पहुंचने लगे, पूरे पंजाब में यह लहर चल पड़ी। कई परिवारों ने अपने घर की भैंसे बेचकर घोड़े खरीद लिये और किसी-किसी ने तो अपने सभी बेटों को गुरू के नाम पर न्यौछावर होने भेज दिया। पंजाब के मालवा क्षेत्र के सिक्ख बंदा सिंह के पास पहले पहुंच गये क्यों कि बांगड देश मालवा क्षेत्र से सटा हुआ था किन्तु पंजाब के दोआबा तथा मांझा क्षेत्रों के सिक्ख दूरी अधिक होने के कारण रास्ते में ही थे।

जत्थेदार बंदा सिंह की पंचायत ने अनुभव किया कि इस समय उन के पास पर्याप्त संख्या में सैन्य बल है। इस विशाल सेना को बिना लक्ष्य बैठाकर रखना घातक हो सकता है। अत: इन को छोटे-छोटे लक्ष्य दिये जाये, जिस से इनका अनुभव बढ़े और संयुक्त रूप से कार्य करने की क्षमता अत्पन्न हो सके। अत: उन्होने सोनीपत को विजय करने का निश्चय किया। उसके पीछे सोनीपत की सैनिक चौकी का कमजोर होना भी था।

बंदा सिंह ने पाँच प्यारे की आज्ञा अनुसार अरदासा सोधकर (प्रार्थना) सोनीपत पर आक्रमण कर दिया। अनुमान ठीक निकला स्थानीय मुग़ल फौजदार अपनी स्थिति कमजोर देखकर बिना युद्ध किये दिल्ली भाग गए। सिक्खों ने बची हुई युद्ध सामग्री कब्जे में ली तथा स्थानीय जनता की पंचायत बुलाई ली और नगर का नियन्त्रण उनको सौंप कर लौट गये।

सोनीपत की विजय से सभी सिक्खों को साहस बढ़ता चला गया। पंजाब से सिक्खों के प्रतिदिन नये-नये काफिले बंदा सिंह के पास पहुंच रहे थे। इस सब समाचारों के मिलने पर सरहिन्द के सूबेदार बजीद खान को भय सताने लगा कि कहीं यह गुरू का बंदा मुझ पर तो आक्रमण नहीं कर देगा। अत: वह सर्तक हो गया। उसने मलेरकोटला के नवाब शेर खान को आदेश दिया कि वह पंजाब के मांझा क्षेत्र से सिक्खों कों बंदा सिंह की सेना के पास न जाने दे, उन्हें सतलुज नदी पर ही रोक रखा जाना चाहिए।

जत्थेदार बंदा सिंह ने महसुस किया कि उस के पास अब विशाल सैन्य बल है अत: उसे अब अपनी शक्ति शत्रु को दुर्बल करने मे लगानी चाहिए। अत: उन्होंने अब बांगड़ देश का सब से धनाढय नगर को ध्वस्त करने का कार्यक्रम बनाया। उस का मुख्य कारण यह था कि यहां श्री गुरू तेग बहादुर जी को शहीद करने वाला जल्लाद जलालुद्दीन और छोटे साहिबजादों को कत्ल करने वाले जल्लाद शाशल बेग और बाशल बेग यहीं पर रहते थे। इस नगर का नाम समाणा था। इस नगर की सुरक्षा के लिए उन दिनों शाही सेना की एक पलटन नियुक्त थी।

जत्थेदार बंदा सिंह ने पांच प्यारों से इस विषय में परामर्श कर के अपनी नई संगठित सेना को सम्बोधित करते हुए आदेश दिया – "मेरे प्यारे भाई रूप में जवानों, हमारा एक मात्र उद्देश्य दुष्टों-अपराधियों को दंडित करना है। इस के साथ ही शत्रु सेना की शक्ति क्षीण करना है और अगामी कार्यो के लिए धन अर्जित करना है। किन्तु हम सब गुरू के सेवक हैं अत: ऐसा कोई कार्य उत्तेजना में न हो जाए जो गुरू को स्वीकार न हो, मेरा तात्पर्य यह है कि हमने किसी निर्दोष को पीड़ित करना नहीं और न ही किसी महिला का अपमान करना है। यदि हम अपने कर्त्तव्य पर अड़िग रहे तो गुरू हमारे अंग संग रहेगा और विजय सदैव हमारी होगी।

यह सुनते ही सभी सिंह सिपाहियों ने जयकारा बुलंद किया "देग तेग फतेह, पंथ की जीत ।। राज करेगा खलसा, आकी रहे न कोय ।।" तत्पश्चात् जय घोष के साथ समाणा नगर पर आक्रमण कर दिया। उस समय समाणा का फौजदार सिंघों की सैनिक गति विधि से बेखबर ऐश्वर्य मे खोया, मस्त पड़ा था। उसे कद्चित आशा नहीं थी कि शाही सेना से कोई लोहा लेने के लिए उनके किलेनुमा नगर पर धावा बोल सकता है। देखते ही देखते सिंघों ने नगर के दरवाजे तोड़ डाले और 'बोले सो निहाल, सत्य श्री अकाल,' के नारे लगाते हुए नगर के अन्दर घुस गये। सिंघों को कई स्थानों पर थोडा बहुत प्रतिरोध का सामना करना पडा किन्तु छोटी मोटी झडपों के पश्चात् बहुत जल्दी समस्त समाणा सिंघों के जुतों के नीचे था। समाणा पर नियन्त्रण करते ही बंदा सिंह ने अपने लक्ष्य अनुसार उन दुष्टों की हवेलियों को चुन लिया जिस से बदला लेना था और उन को ध्वस्त करने के लिए अग्नि को भेंट कर दिया। समस्त शाही सेना को शस्त्र-अस्त्र डालने पर विवश किया किन्तु अधिकांश शाही फौजी मारे

जा चुके थे। इसलिए जत्थेदार बंदा सिंह को बहुत बड़ी संख्या में सैन्य सामग्री हाथ लगी।

जनसाधारण सिंघो के आक्रमण से बहुत भयभीत था। विशेष कर महिलाएं भगदड़ में विलाप कर रही थी। सभी को बंदा सिंह ने विश्वास में लिया और कहा- समस्त महिलाएं हमारी माता, बहने और बेटियां है किसी को भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, हम किसी भी निर्दोष व्यक्ति को कष्ट देना नहीं चाहते। इस विजय से बंदा सिंह के हाथ बड़ा सरकारी खज़ाना आया। बंदा सिंह ने व्यर्थ कें किसी प्रकार के रक्तपात को होने ही नही दिया। क्योकि वह बहुत कोमल हृदय का स्वामी था, उस का पिछला जीवन वैरागी साधु का था, जिसने हिरनी के शिकार करने पर उसके पेट के बच्चों के मरने पर संन्यास ले लिया था। इस समय वह अपने गुरू के बच्चों पर हुए अत्याचार का बदला लेने आया था। अत: वह स्वयं दूसरो पर अत्याचार किस प्रकार कर सकता था। जब कि उस के गुरू के आदेश था कि गरीब के लिए तुम रक्षक बनोगें और दुष्टों के लिए महाकाल ।

जत्थेदार बंदा सिंह ने समाणा नगर को विजय करने के पश्चात वहा की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए योग्य और सहासी वीर फतेह सिंह को स्थानीय फ़ौज़दार नियुक्त कर दिया। उन दिनों कानून व्यवस्था का संचालक विरिष्ठ सैन्य अधिकारी ही हुआ करते थे। समाणा नगर की विजय से जत्थेदार बंदा सिंह को अनेकों राजनैतिक लाभ हुए। पहला - सिक्ख सेना को चारों ओर धाक जम गई, जिस को सुनकर सभी नानक पंथी सिंह सजकर (केशधारी रूप धारण करके) खालसा फौज में भर्ती हो गये। जिस से बंदा सिंह के नेतृत्व में विशाल सिक्ख सेना पुन:-संगठित हो गई। दूसरा मुग़ल सेना के हौसले पस्त हो गये। वह जत्थेदार बंदा सिंह के नाम से भय खाने लगे। उन का विचार था कि बंदा सिंह कोई चमत्कारी शक्ति का स्वामी है जिस के सामने टिक पाना सम्भव नहीं।

समाणा की पराजय सुनकर राजपूताने से सम्राट बहादुर शाह ने सरहिन्द के सूबेदार वजीद खान को आदेश भेजा की वह बंदा सिंह को परास्त करे और उसकी सहायता के लिए दिल्ली व लाहौर से सेनाएं भेजी गई। अत: संदेश प्राप्त होते ही वज़ीद खान ने अपने गुप्तचर विभाग को बंदा सिंह की सैनिक शक्ति का अनुमान लगाने का कार्य सौंपा। जैसे ही वजीद खान का गुप्तचर विभाग सक्रिय हुआ बंदा सिंह के जवानों के हाथों पकड़ लिया गया और जत्थेदार बंदा सिंह के समक्ष पेश किया गया। इस पर बंदा सिंह ने अपने पांच प्यारों वाली पंचायत बुलाकर इस विषय पर विचार गोष्ठि की। निर्णय यह हुआ कि इन गुप्तचर कर्मीयों के हाथों वजीद खान को चेतावनी भेजी जानी चाहिए कि हम अपने गुरू के बेटों कि हत्या का प्रतिशौध लेने आ रहें है। वह समय रहते अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लें।

जैसे ही इन गुप्तचर कर्मीयों ने वजीद खान कों बंदा सिंह के सैन्य बल का विवरण दिया। वह बहुत भयभीत हुआ। उसने नई फौजी भर्ती प्रारम्भ कर दी और सम्राट के आश्वासन अनुसार दिल्ली व लाहौर के सूबों से सैनिक सहायता जल्दी भेजने का आग्रह किया। वजीद खान ने अपना सम्पूर्ण ध्यान अपनी सैनिक शक्ति बढाने पर एकाग्र कर दिया। वह सभी प्रकार की सैनिक सामग्री व रसद इकट्ठी करने में जुट गया ।

जत्थेदार बंदा सिंह को पांच प्यारे की पंचायत ने अनुरोध किया कि यह समय उपयुक्त है, हमें सरहिन्द पर धावा बोल देना चाहिए किन्तु बंदा सिंह ने विचार रखा कि पंजाब के मांझा क्षेत्र व दूर-दराज के क्षेत्रों के सिंघों को भी आ जाने दो। कुछ सिंघों ने कहा कि यदि हम मांझे के सिंघों की प्रतिक्षा करेगें तो दूसरी और सम्राट के शाही सैनिक भी लाहौर व दिल्ली से वजीद खान की सहायता के लिए पहुँच जायेगे। इस पर पतिद्वन्दी पक्ष की स्थिति अधिक सुदृढ हो जाएगी। अत: कड़ा मुक्काबला करना पड़ेगा। उत्तर में बंदा सिंह ने कहा- "मैं वही तो चाहता हूँ कि एक ही समय में शत्रु को बुरी तरह परास्त किया जाये और अपनी धाक जमा ली जाये, जिससे आगे के रणक्षेत्र विजय करने में कठिनाई न होगी ।

बंदा सिंह अपने सैनिकों को प्रसन्न रखने का हर प्रयास करता था। उस की उदारता से सभी सन्तुष्ट थे। उसे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए था, वह सारा ध्यान लोक भलाई के कार्य पर केन्द्रित रखना चाहता था। इसलिए स्थानीय जनता बहुत खुश थी। बड़े-बड़े जमींदारों के सताये हुए मज़दूर व किसान सिक्खों की दरीयां दिली से प्रभावित होकर सिक्खों के पक्षधर बन गये। जैसे ही सिक्खों ने अपने उज्जवल आचर्ण से स्थानीय जनता का मन जीता। जन साधारण में मुग़लों की गुलामी से स्वतन्त्रता की लहर दौड़ गई। सभी बंदा सिंह को अपना प्रतिनिधि मानने लगे और उसे सभी प्रकार की अपनी-अपनी सेवाएं अर्पित करने लगे ।

अब जत्थेदार बंदा सिंह बिना समय नष्ट किये सरहिन्द के सभी परगनों को एक-एक कर के विजय करने का कार्यक्रम लेकर चल पड़ा। उन दिनों घुड़ाम नामक कस्बा एक छावनी थी। सरहिन्द को विजय करने से पहले ऐसे महत्वपूर्ण स्थानों को अपने नियन्त्र में लेना अति आवश्यक था। अत: खालसा दल ने घुड़ाम को घेर लिया। घुड़ाम का फौजदार पराजय मानने वालों में से नहीं था, उसने चुनौती को स्वीकार किया और भयंकर युद्ध हुआ। दोनो पक्षों को भारी क्षती उठानी पड़ी किन्तु बंदा सिंह के विशाल सैन्य बल के सामने एक घड़ी भी टिक न सके और भाग निकले। दल खालसा ने उन की खूब धुनाई की। तत्पश्चात् खालसा दल ठसके नामक स्थान पर पहुंचा, यहां के पीर बहुत अजमत (चमतकारी शक्तियों) वाले थे, अत: स्थानीय हाक्मि विचार रहे थे कि बंदा सिंह की यहां खैर नही, हम उसे नगर के निकट भी नहीं आने देगें। किन्तु पीरों की एक न चली। खालसा दल के सामने वे क्षण भर भी टिक न सके। खालसा दल नगर में प्रवश करे, इससे पहले स्थानीय पीर जाफ़र अली खान स्वयं कांपते हुए मुंह में घास लेकर बंदा सिंह के सम्मुख उपस्थित हुआ और कहने लगा- "हमें क्षमा करें, हम आप की गाय हैं ।" बंदा सिंह बहुत दयालु प्रवृति वाला था। उसने शरण आये की लाज रख ली और कहा- "अड़े सो झड़े, शरण पड़ सो तरे"। इस प्रकार उसने

ठसका क्षेत्र को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई केवल सैन्य सामग्री और नगद की मांग की जो कि उसें स्थानीय जनता ने नज़राने के रूप में भेंट में दे दी। अब बारी थी थानेश्वर की किन्तु बंदा सिंह किसी भी तीर्थ स्थल का अपमान नहीं करना चाहता था। वह बहुत धार्मिक प्रवृति रखता था अत: थानेश्वर पर आक्रमण का कार्यक्रम स्थगित कर दिया गया ।

इस के बाद शाहबाद की बारी आई। स्थानीय फौजदार बंदा सिंह के आगमन की बात सुन कर कांपने लगा। उसे समाणे की दुर्दशा का विवरण मिल चुका था। वह सपरिवार दिल्ली भाग गया। बंदा सिंह के दल खालसा के सामने स्थानीय फौजियों ने सफेद झंड़ा लहरा दिया। अब रक्तपात का प्रश्न ही नहीं उठता था। बंदा सिंह ने सभी को विश्वास में लिया और यहीं से धन सम्पदा और सैन्य समग्री की आपूर्ति की ।

यहां बंदा सिंह बहादुर को बताया गया कि कुन्जपुरा नामक स्थान वज़ीद खान का पुश्तैनी गांव है। बस फिर क्या था बंदा सिंह ने दल खालसे को आदेश दिया पहले कुन्जपुरा गांव ही ध्वस्त कर दिया जाये। उधर वाजीद खान को भी अनुमान था कि बढ़ते हुए खालसा दल का अगला लक्ष्य मेरा पुश्तेनी गाँव कुन्जपुरा ही होगा। अत: उसने उस की सुरक्षा के लिए दो हजार घोड़सवार और चार हज़ार प्यादे, दो बड़ी तोपे भेज दी। वह यहीं सिक्खों की शक्ति की परीक्षा लेना चाहता था। किन्तु शाही सेना के वहां पहुंचने से पूर्व ही दल खालसा ने कुन्जपुरा को रौंद ड़ाला। जब शाही सेना पहुंची तो घमासान युद्ध हुआ। दल खालसा ने अपनी संख्या के बल पर तोपों पर नियन्त्रण कर लिया और शाही सेना को मार भगाया। इस भगदड़ में मुग़ल सेना बहुत सी रणसामग्री और घोड़े इत्यादि पीछे छोड़ गई। इस युद्ध में सिक्खों के हाथ मुस्तफाबाद का क्षेत्र आ गया (यह स्थान जगाधरी के निकट है) ।

इस विजय की खुशी में कुछ सिंह चारों ओर के गांव कस्बों का सर्वेक्षण कर रहे थें कि उन्हें कुछ व्यक्ति एक स्थान पर गायों का वध करते दिखाई दिये उन्होंने कसाईयों को ललकारा। किन्तु वे नहीं माने, कहने लगे, आज बकरीद है, अत: हमने त्यौहार गौ मांस से ही मनाना है। इस पर झगड़ा प्रारम्भ हो गया। कहा–सुनी से तलवारे चल पड़ी और रक्तपात हो गया, देखते ही देखते समस्त गांव सिंघों पर टूट पड़ा, सिंह घायल हो गये। जैसे ही यह सूचना दल खालसे में पहुंची, वे सहायता को दौड़ पड़े और समस्त दोषियों को पहचान कर पकड़ लाये और उन्हें बंदा सिंह के समक्ष पेश किया। जत्थेदार प्रशासनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए न्याय पर बहुत बल देते थे। उन्होंने इन अपराधियों को न्याय के लिए समस्त घटना क्रम को सुना और दोनों पक्षों के अपराधियों को उचित दण्ड देने की घोषणा कर दी ।

इस घटना के पश्चात् हिन्दू व मुस्लिम दोनों दल खालसा को चाहने लगा। उन्होंने लम्बे समय पश्चात् कोई निर्पेक्ष न्याय–इन्साफ अपनी आंखों से देखा था। इस इन्साफ को देखकर कपूरी क्षेत्र के निवासी बंदा सिंह के दरबार मे उपस्थित हुए और फरियाद करने लगे, कपूरी का हाकिम कदमुद्दीन बहुत अय्यासी प्रवृति का है, वह हिन्दू बहु–बेटियों का सदैव सतीत्व भंग करता रहता है। बस फिर क्या था; जत्थेदार बंदा सिंह जी ने कदमुद्दीन को सीख देखे का कार्यक्रम बना डाला। दूसरी सुबह दल खालसा कपूरी पर नियन्त्रण करने में सफल हो गया और उन्होंने हाकिम कदमुद्दीन को उस की हवेली में ही भस्म कर दिया ।

दल खालसे का अगला लक्ष्य सढौरा नगर था। यहां के हाकिम उस्मान खान ने पीर बुद्धु शाह जी (सैयद बदरूद्दीन) की हत्या करवा दी थी क्योंकि पीर जी ने भंगाणी क्षेत्र के युद्ध में साहब श्री गुरू गोबिंद सिंह जी का पक्ष लिया था। इस युद्ध में पीर जी अपने चार पुत्रों, दो भाईयों व 700 मुरीदों के साथ भाग लेने पहुंचे थें। उनके दो पुत्र व एक भाई रण क्षेत्र मे काम आये थे। यह युद्ध हिन्दू पर्वतीय नरेशों के संग हुआ था। दल खालसा भला अपने गुरूदेव के हित में जूझने वाले के उपकारों को कैसे भूल सकते थे। अत: दल खालसा सढौरा नगर पर आक्रमणकारी हो गया।

बंदा सिंह को सूचित किया गया, यहां का हाकिम उस्मान खान बहुत मुतस्बी (कटट्र पंथी) है, वह हिन्दू जनता का दमन करता रहता है और कई प्रकार से परेशान करता रहता है। दल खालसे का उद्देश्य तो दुष्टों का दमन करना ही था। अत: बंदा सिंह जी ने सढौरा नगर विजय करने का कार्यक्रम बनाया। इस समय दल खालसा बहुत मज़बूत स्थिति में था। उनकी अपनी संख्या चालिस हज़ार के लगभग पहुंच चुकी थी, फिर भी उन्होंने शत्रु को कमजोर नहीं समझा। इस लिए पीर बुद्ध शाह के उत्तराधिकारी को संदेश भेजा कि वह दल खालसा की सहायता और मार्ग दर्शन के लिए तैयार रहे। जैसे ही दल खालसा सढौरा नगर के निकट पहुंचा। शत्रु ने नगर के दरवाजे बन्द कर लिए और उन के उपर से तोपों से दल खालसे पर गोले दागनें शुरू कर दिये। भयकंर परिस्थिति थी। परन्तु दल खालसा शहीदी पोशाक पहन कर आये थे। उन्होंने कुर्बानियां देते हुए नगर का दरवाजा तोड़ डाला और नगर के अन्दर घुसने में सफल हो गये। अन्दर सैनिक तैयारियां बहुत बड़े पैमाने पर थी। अत: भंयकर युद्ध हुआ किन्तु पीर जी के मुरीदों की सहायता मिल गई फिर क्या था, कुछ घंटों के भीतर ही सढौरा नगर पर खालसे का नियन्त्रण हो गया। किन्तु उस्मान खान किले के भीतर आकी हो कर बैठ गया। किला फतेह करना कोई सरल कार्य न था किन्तु दल खालसा ने अपनी संख्या के बल पर और युद्ध नीति के अन्तरगत पीर बुद्ध शाह के मुरीदों की सहायता प्राप्त कर यह कठिनाई भी हल कर ली और किले का दरवाजा अन्दर से खुलवा कर उस्मान खान को पकड़ कर मृत्यु दण्ड दे दिया। बाकी सभी अमीर, चौधरी, वजीर तथा नवाब मुंह में घास लेकर सफेद झंडा लहराने लगे। वे बंदा सिंह की कमजोरी जानते थे। उन्होने बंदा सिंह से क्षमा याचना करते हुए कहा – " हम आप की गाय है, इस बार बख्श दें।" बंदा सिंह रक्तपात तो चाहता नही था, अत: बंदा सिंघ ने उन्हें पुन: गद्दारी न करने की शपथ लेकर क्षमा कर दिया।

इस विजय से जहां लाखों की नगद सम्पति दल खालसा के हाथ लगी। वहां उस की धाक पूरे पंजाब क्षेत्र मे बैठ गई। बंदा सिंह अभी सढौरे नगर की प्रशासनिक व्यवस्था से उल्झा ही हुआ था कि एक अद्भुत घटना घटि। एक स्थान पर दल खालसा के जवान अपने ऊँट और

घोड़े चरा रहे थे कि एक ऊँट भाग कर एक खेत मे घुस गया। उस जवान ने ऊँट को पीट कर वापस लाने के लिए एक राही से बांस छीनकर ऊँट को पीटा। बांस खोखला था, टूट गया। परन्तु यह क्या? उसमें से एक पत्र नीचे गिर पड़ा। जवान ने वह पत्र पढ़ा और उस राही को जो भाग रहा था, पकड़ लिया और जत्थेदार बंदा सिंह के समक्ष पेश किया। पत्र की इबारत में सरहिन्द के सुबेदार को लिखा गया था कि वह सरहिन्द से सढौरें नगर पर आक्रमण कर दे, इस बीच हम बंदा सिंह को बहला फुसला रखेगें जैसे ही बाहरी आक्रमण हुआ। हम नगर के अन्दर बगावत कर देंगे। इस प्रकार बंदा सिंह और उस का दल युक्ति से घेरे में फंस सकता है। इस पत्र को पढ़ कर बंदा सिंह ने उन सभी लोगों की सभा बुलाई जिन को सढौरे के किले में से पकड़ लिया गया था और जिन्हें क्षमा याचना मांगने पर जीवन दान दिया गया था। इन लोगों ने छल कपट न करने कि कसम खाई थी। इस सभा को सम्बोधिन करते हुए जत्थेदार बंदा सिंह ने कहा – आपके विचार में यदि कोई कसम खा कर दगाबाजी करे तो उस समय उसे क्या दण्ड़ दिया जाना चाहिए। उत्तर में सभी एक मत होकर कह उठे, मृत्यु दण्ड का अधिकारी है वह। बस फिर क्या था बंदा सिंह ने वह पत्र उस सभा में प्रदर्शित किया। पत्र को देखकर सभी अमीरों, वजीरों व नवाबों पर बज्रपात हुआ। वे स्तब्ध रह गये कि यह गुप्त पत्र बंदा सिंह के पास किस प्रकार पहुंचा। अब तो उन्हें मृत्यु सिर पर मड़राती हुई दिखाई देने लगी। किन्तु वह बहुत चतुर थे, उन्होंने बंदा सिंह को दण्डवत प्रणाम किये और कहा – इस बार हमें क्षमा कर दो। उत्तर में बंदा सिंह ने कह दिया –तुम से जो व्यक्ति पीर बुद्ध शाह जी की हवेली में शरण ले लेगा उन्हें क्षमा दान दे दिया जायेगा, बाकियों को मृत्यू दण्ड। इतना सुनना था कि सभी पीर जी की हवेली में घुसने दौड़े जब पीर जी की हवेली में कोई रिक्त स्थान न रहा तो बंदा सिंह ने आदेश दिया जो व्यक्ति कमजोर होने के कारण हवेली में पनाह नहीं ले सके, उन्हें क्षमादान दिया जाता है। और हवेली के अन्दर घुसे लोगों को मृत्यु दण्ड। बस फिर क्या था। आदेश पाते ही दल के जवानों ने हवेली को आग लगा दी। किसी को भी वहां से भागने नहीं दिया और सभी को भस्म कर दिया।

इस घटना के पश्चात् 15 नवम्बर 1709 को सढौरा नगर की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए खालसा पंचायत की स्थापना कर दी। इस के साथ ही निकट के जंगलों में से एक लम्बा चीड़ का वृक्ष कटवा कर उस पर खालसे का ध्वज केसरी रंग में लहरा दिया। अब खालसे दल को अपने लिए कोई सुरक्षित किले की आवश्यकता थी। अत: सढौरा नगर के सात कोस दूर एक टेकरी पर बने हुए किले को फतेह करने का निश्चय किया गया। इस किले का नाम मुखलस गढ़ था। इसे इसी पठान ने तैयार करवाया था जो इस समय उस में फौजदार नियुक्त था। दल खालसे के पहुंचने पर भाग खड़ा हुआ किन्तु पकड़ लिया गया और सदा की नींद सुला दिया गया। किले पर नियन्त्रण होते ही बंदा सिंह ने किले का नाम बदल कर लोहगढ़ कर दिया। दल खालसा ने अपना खजाना, रसद, शस्त्र–अस्त्र यहां सुरक्षित किये और इस किले को केन्द्र बना कर अगामी योजना बनाने लगा।

पंजाब के माझा क्षेत्र के सिंघो से शेर खान का युद्ध

अब हम उन सिंघो का वर्णन करते है जो कीरतपुर में एकत्र हो रहे थे। इस समाचार ने कि सिंह सरहिन्द की ओर बढ़ने का कार्यक्रम बना रहें है, बजीद खान की नींद हराम कर दी। उसने सिंघो के दोनों दलों को मिलने से रोकने के लिए समस्त शक्ति लगा दी। मलेरकोटले के नवाब शेर मुहम्मद खान को कीरतपुर वाले सिक्खों को आगे बढने से रोकने के लिए भेजा। शेर मुहम्मद के पास अपनी सैनिक टुकडियां भी थी। नवाब के साथ उसका भाई खिजर खान तथा दो भतीजे खान वली व मुहम्मद बख्श भी थे। उस समय दूसरी ओर सिक्खों की संख्या इन की तुलना मे बहुत कम थी। उनके पास कोई अच्छे शस्त्र–अस्त्र भी न थे। रोपड़ के पास दोनों सेनाओं का सामना हुआ। सिंह बहुत बहादुरी से लड़े परन्तु संध्या समय ऐसा अनुभव हो रहा था कि जैसे शेर मुहम्मद का पक्ष भारी है। किन्तु रात्रि में सिंघो का एक दल माझा क्षेत्र से आ पहुंचा बस फिर क्या था, दूसरे दिन सूर्य उदय होते ही सिंघों ने खिजर खान पर आक्रमण कर दिया। सिंह आगे ही बढते गये। दोनों सेनाएं इतनी समीप हो गयी कि हाथों–हाथ युद्ध आरम्भ हो गया। इस समय सिंघों ने खूब तलवार चलाई। खिजर खान ने सिखों को हथियार फेंक देने के लिए ललकारा, तभी उस की छाती में एक गोली लगी, जिसने उस को सदैव के लिए मौत की गोद मे सुला दिया। पठान, खिजर खान को गिरते हुए देखकर भाग उठे। शेर मुहम्मद खान स्वयं आगे बढ़ा। उसके भतीजे भी साथ थे, जो अपने पिता के शव को उठाना चाहते थे, परन्तु सिंघों ने उन दोनों को भी जहन्नुम पहुंचा दिया। शेर मुहम्मद खान भी घायल हो गया। मुगल सेनाएं सिर पर पैर रखकर भाग उठी। इस प्रकार मैदान सिंघों के साथ आया।

वजीद खान की तैयारी

सरहिन्द के सूबेदार बजीद खान ने खालसा दल के सेना नायक बंदा सिंह बहादुर से निपटने के लिए युद्ध की तैयारियों में सभी सम्भव साधन जुटा दिये। शाही सेना ने दिल्ली व लाहौर से कुमक मंगवाई। नई भर्ती खोल दी गई। अपने सज्जन, मित्र राजवाडों को सहायता के लिए बुला लिया और जहाद का नारा लगा कर गा़जीओ के झुरमट इक्टठे कर लिए। उसने गोला–बारूद से गोदाम भर लिए। अनगनित तोप और हाथी अनगिनत इकट्‌ठे कर लिये गये। इतिहासकारों का अनुमान है कि इन सब लड़ाकों की संख्या एक लाख के करीब हो गई थी। वह किसी प्रकार भी पराजित होने का ख़तरा नहीं लेना चाहता था। अत: उस ने दल खालसा की संख्या और शक्ति को जांचने के उपाये किये। उसने सुच्चा नंद के भतीजे को एक हजार हिन्दू सैनिक देकर बंदा सिंह के पास भेजा और उसे छल कपट करने का अभिनय करने को कहा– “कि वह मुगलों के अत्याचारों से पीड़ित है अत: वह वहाँ से भागकर आप की शरण में आया है”। इस के पीछे योजना यह थी कि जैसे ही सुच्चा नन्द का भतीजा

उनका विश्वास पात्र बन जायेगां ठीक युद्ध के समय, गर्म रणक्षेत्र से उस की सेना भागकर वापस शाही सेना में आ मिलेगी और दल खालसा के भेद बतायेगी। इस प्रकार उन पर विजय प्राप्त करना सहज हो जायेगा।

दल खालसा का योजनाबद्ध कार्यक्रम

दल खालसा के जत्थेदार बंदा सिंह बहादुर को उस के सहायक परामर्श देने लगे कि हमें और देरी नहीं करनी चाहिए जल्दी ही सरहिन्द पर आक्रमण कर देना चाहिए। इस पर बंदा सिंह ने विचार दिया हम धीरे-धीरे आगे बढते है और माझा क्षेत्र के सिंघों के पहुचने तक स्थानीय गुरू के सिक्खों को प्रेरित कर के शस्त्र उठवाने का प्रयास करते है। जिस से हमारी संख्या शत्रु के मुकाबले की हो जाये। बंदा सिंह का विचार उत्तम था कि यह क्षेत्र गुरू घर के श्रद्धलुओं का था। जैसे ही दल खालसा ने सेना भर्ती अभियान चलाया आस-पास के लोग गुरू साहब के हुक्मनामों के कारण और बंदा सिंह के चुम्बकीय आकर्षण के कारण, गुरूदेव के बच्चों का बदला लेने के विचार से दल खालसा के नायक बंदा सिंह के नेतृत्व मे इकट्ठे हो गये। कुछ ही दिनों में बंदा सिंह के जवानों की संख्या चालिस हजार से सत्तर हजार हो गई। वास्तव में लोग बंदा सिंह को गुरूदेव का प्रतिनिधि समझते हुए अपने को समर्पित करने लगे। जैसे ही बंदा सिंह ने अनुभव किया कि अब हमारे पास प्रयाप्त मात्रा में सभी प्रकार के साधन उपलब्ध है तो वह अपना सैन्य बल लेकर सरहिन्द की ओर बढ़नें लगा। यहीं उसे सुच्चा नंद का भतीजा एक हजार सिपाहियों के साथ मिला और उसने दल खालसा से शरण मांगी। इस पर दल खालसा की पंचायत ने बहुत गम्भीरता से विचार किया। पंचायत का मत था कि वह शत्रु पक्ष का व्यक्ति है केवल छल-कपट की राजनीति के कारण हमारे पास पहुंचा है इसलिए इसे कदाचित शरण नहीं देनी चाहिए। एक विचार यह भी था कि इसे वापस लोटाने से शत्रु की शक्ति बढेगी। यदि इसे निष्क्रिय कर के अपने पास रखा जाये तो अच्छा है। अत: इसे सबसे पिछली पंक्ति में रखा जाना चाहिए ताकि किसी प्रकार कि क्षति न पहुंचा सके ।

दल खालसा को आशा थी कि बनुड़ क्षेत्र में पहुचने पर वजीद खान की सेना से आमना-सामना हो जाएगा परंन्तु वाजीद खान की सेना और उसके सहयोगी शेर मुहम्मद खान रोपड़ के पास कीर्तपुर से आये माझा क्षेत्र के सिंघों से जुझ रहा था। उसका ध्येय था कि यहां से सिक्ख लोग दल खालसा से न मिल सके। परन्तु वह इस लक्ष्य को प्राप्त न कर सका। वहां पर एक भाई और दो भतीजे मरवा कर घायल अवस्था में मलेरकोटला लौट आया।

दल खालसा की शक्ति का सामना बनुड का फौजदार न कर सका और जल्दी ही परास्त हो गया। इस प्रकार बनूड़ क्षेत्र दल खालसा के कब्जे मे आ गया। यहां से बहुत बड़ी संख्या में दल को अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हुए। अब दल खालसा ने निर्णय लिया, पहले माझा क्षेत्र से आ रहे सिंघों को मिल लिया जाये वे रोपड़ की ओर प्रस्थान कर गये। दोनों दलों का खरड़ ग्राम के निकट छप्पड़चीरी नामक गांव मे मिलन हुआ। दोनों ओर से खुशी में जयकारे बुलंद किये गयें। 'जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल'।

छप्पड़ चीरी का ऐतिहासिक युद्ध

सरहिन्द के सुबेदार वज़ीद खान को सूचना मिली कि बंदा सिंह के नेतृत्व मे दल खालसा और माझा क्षेत्र का सिंघो का काफला आपस मे छप्पड़ चीरी नामक गांव में मिलने मे सफल हो गया है और वे सरहिन्द की ओर आगे बढने वाले हैं। तो वह अपने नगर की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए, सिक्खों से लोहा लेने अपना सैन्य बल लेकर छप्पड़ चीरी की ओर बढने लगा। दल खालसा ने वही मोर्चा बंदी प्रारम्भ कर दी। वज़ीद खान की सेना ने आगे हाथी, उस के पीछे ऊंट, फिर घोड़ सवार और उस के पीछे तोपे व प्यादे (सिपाही)। अंत मे हैदरी झंडे के नीचे, गाज़ी जेहाद का नारा लगाते हुए चले आ रहे थे अनुमानत: इन सब की संख्या एक लाख के लगभग थी। सरहिन्द नगर की छप्पड चीरी गांव से दूरी लगभग 20 मील है।

इधर दल खालसा के सेनानायक जत्थेदार बंदा सिंह बहादुर ने अपनी सेना का पुनर्गठन कर के अपने सहायक फतेह सिंह, कर्म सिंह, धर्म सिंह और आली सिंह को मालवा क्षेत्र की सेना को विभाजित कर के उपसेना नायक बनाया। माझा क्षेत्र के सेना को विनोद सिंह और बाज सिंह की अध्यक्षता मे मोर्चा बंदी करवा दी। एक विशेष सैनिक टुकड़ी (पलटन) अपने पास संकट काल के लिए इन्दर सिंह की अध्यक्षता मे सुरक्षित रख ली और स्वयं एक टीले (टेकरी) पर विराज कर युद्ध को प्रत्यक्ष दूरबीन से देखकर उचित निर्णय लेकर आदेश देने लगे। दल खालसा के पास जो छ: छोटे आकार की तोपे थी उन को भूमिगत मोर्चो में स्थित कर के शाहबाज सिंह को तोपखाने का सरदार नियुक्त किया। इन तोपों को चलाने के लिए बुंदेलखण्ड के विशेषज्ञ व्यक्तियों को कार्यभार सौंपा गया। तोपचियों का मुख्य लक्ष्य, शत्रु सेना की तोपों को खदेड़ना और हाथियों को आगें न बढ़ने देने का दिया गया, सब से पीछे नवसीखियें जवान रखे गये और उस के पीछे सुच्चा नंद के भतीजे गंडा मल के एक हज़ार जवान थे ।

सूर्य की पहली किरण धरती पर पड़ते ही युद्ध प्रारम्भ हो गया। शाही सेना नाअरा-ए-तकबीर- अल्लाह हू अकबर के नारे बुलंद करते हुए सिंघों के मोंर्चो पर टूट पड़ी। दूसरी ओर से दल खालसा ने उत्तर में "बोले सो निहाल, सत श्री अकाल" जय घोष कर के उत्तर दिया और छोटी तोंपों के मुंह खोल दिये। यह तोपे भूमिगत अदृश्य मोर्चो में थी अंत इनकी मार ने शाही सेना की अगली पंक्ति उड़ा दी। बस फिर क्या था

शाही सेना भी अपनी असंख्य बड़ी तोपो का प्रयोग करने लगी। दल खालसा वृक्षों की आड़ में हो गया। जैसे ही शत्रु सेना की तोपों की स्थिति स्पष्ट हुई शाहबाज सिंह के तोपचियों ने अपने अचूक निशानों से शत्रु सेना की तोपों का सदा के लिए शांत करने का अभियान प्रारम्भ कर दिया जल्दी ही गोला-बारी बहुत धीमी पड़ गई। क्योंकि शत्रु सेना के तोपची अधिकांश मारे जा चुके थे। अब मुग़ल सेना ने हाथियों की कतार को सामने किया परन्तु दल खालसा ने अपनी निर्धारित नीति के अंतर्गत वही स्थिति रख कर हाथियों पर तोप के गोले बरसाए इस से हाथियों में भगदड़ मच गई। इस बात का लाभ उठाते हुए घोड़ सवार सिंह शत्रु खेमे में घुसने में सफल हो गये और हाथियों की कतार टूट गई। बस फिर क्या था? सिंघों ने लम्बे समय से हृदय में प्रतिशोध की भावना जो पाल रखी थी, उस अग्नि को ज्वाला बनाकर शत्रु पर टूट पड़े घमासान का युद्ध हुआ। शाहीसेना केवल संख्या के बल पर विजय की आशा लेकर लड़ रही थी, उन में से कोई भी मरना नहीं चाहता था जबकि दल खालसा विजय अथवा शहीदी में से केवल एक की कामना रखते थे, अत: जल्दी ही मुग़ल फौजें केवल बचाव की लडाई लड़ने लगे। देखते ही देखते शवों के चारों ओर ढेर दिखाई देने लगे। चारों तरफ मारो-मारो की आवाजें ही आ रही थी। घायल जवान पानी-पानी चिल्ला रहे थे और दो घण्टों की गर्मी ने रणक्षेत्र तपा दिया था। जैसे-जैसे दोपहर होती गई जहादियों का दम टूटने लगा उन्हें जेहाद का नारा धोखा लगने लगा, इस प्रकार गा़जी धीरे-धीरे पीछे खिसकने लगे। वह इतने हताश हुए कि मध्य दोपहरी तक सभी भाग खड़े हुए। दल खालसे का मनोबल बहुत उच्च स्तर पर था। वे मरना तो जानते थे, पीछे हटना नहीं। तभी गददार सुच्चानंद के भतीजे गंडामल ने जब खालसा दल मुग़लों पर भारी पड़ रहा था, तो अपने साथियों के साथ भागना शुरू कर दिया। इस से सिंघों के पैर उखड़ने लगे क्योंकि कुछ नौसिखिए सैनिक भी गर्मी की परेशानी न झेलते हुए पीछे हटने लगे। यह देखकर मुग़ल फौजियों की बाछें खिल उठी। इस समय अबदुल रहमान ने वजीद खान को सूचना भेजी "गंडामल ब्रह्माण ने अपना इकरार पूरा कर दिखाया है, जहांपना"। इस पर वजीद खान ठहका मार के हंसा और कहने लगा,"अब मरदूद बंदे की कुमक क्या करती है, बस देखना तो यहीं है। अब देरी न करो बाकी फौज भी मैदान-ए-जंग में भेंज दो, इन्शा-अल्ला जीत हमारी ही होगी।"

दूसरी तरफ जत्थेदार बंदा सिंह और उसके संकट कालीन साथी अजीत सिंह यह दृश्य देख रहे थे। अजीत सिंह ने आज्ञा मांगी "गंडामल और उस के सवारों को गद्दारी का इनाम दिया जाये"। परन्तु बंदा सिंह हंसकर कहने लगा "मैं यह पहले से ही जानता था खैर..........अब आप ताजा दम संकट कुमक लेकर विकट परिसिथियों में पड़े सैनिकों का स्थान लो"।

अजीत सिंह तुरन्त आदेश का पालन करता हुआ वहां पहुंचा जहां सिंघों को कुछ पीछे हटना पड़ गया था। फिर से घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। मुग़लो की आशा के विपरीत सिंघों की ताजा दम कुमक ने रणक्षेत्र का पासा ही मोड़ दिया। सिंह फिर से आगे बढ़ने लगे। इस प्रकार युद्ध लड़ते हुए दोपहर ढलने लगी। जो मुग़ल कुछ ही देर में अपनी जीत के अंदाजे लगा रहे थे। वह भूख-प्यास के मारे पीछे हटने लगे किन्तुं वह भी जानते थे कि इस बार की हार उनके हाथ से सरहिन्द तो जायेगा ही; साथ में मृत्यु भी निश्चित ही है। अत: वह अपना अंतिम दाव भी लगाना चाहते थे। इस बार वजीद खान ने अपना सभी कुछ दाव पर लगाकर फौज को ललकारा और कहा - "चलो गा़जियों आगे बढ़ो और काफ़िरों को मार कर इस्लाम पर मंडरा रहे खतरे को हमेशा के लिए खत्म कर दो। इस हल्ला शेरी से युद्ध एक बार फिर भड़क उठा। इस बार उपसेना नायक बाज सिंह, जत्थेदार बंदा सिंह के पास पहुंचा और उसने बार-बार स्थिति पलटने की बात बताई। इस बार बंदा सिंह स्वयं उठा और शेष संकट कालीन सेना लेकर युद्ध भूमि मे उतर गया। उसे देखकर दल खालसा में नई स्फूर्ति आ गई। फिर से घमासान युद्ध होने लगा। इस समय सूर्यास्त होने में एक घण्टा शेष था। उपनायक बाज सिंह व फतेह सिंह ने वजीद खान के हाथी को घेर लिया। सभी जानते थे कि युद्ध का परिणाम आखरी दाव में छिपा हुआ है, अत: दोनों ओर के सैनिक कोई कसर नहीं छोड़ना चाहते थे। सभी सैनिक एक-दूसरे से गुथम-गुथा होकर विजयी होने की चाहत रखते थे।

ऐसे में बंदा सिंह ने अपने गुरूदेव श्री गुरू गोबिंद सिंह जी प्रदान वह बाण निकाला जो उसे संकट काल सें प्रयोग करने के लिए दिया गया था। गुरूदेव जी ने उसे बताया था, वह बाण आत्मबल का प्रतीक है। इस के प्रयोग पर समस्त अदृश्य शक्तियां तुम्हारी सहायता करेगी।

ऐसा ही हुआ देखते ही देखते वजीद खान मारा गया और शत्रु सेना के कुछ ही क्षणों में पैर उखड़ गये और वे भागने लगे। इस समय का सिंहों ने भरपूर लाभ उठाया, उन्होंने तुरन्त मलेरकोटला के नवाब शेर मुहम्मद खान तथा ख्वाजा अली को घेर लिया वे अकेले पड़ गये थे। उनकी सेना भागने में ही अपना भला समझ रही थी। इन दोनों को भी बाज सिंह व फतेह सिंह ने रणभूमि में मुकाबले में मार गिराया। इनके मरते ही समस्त मुग़ल सेना जान बचाती हुई सरहिन्द की ओर भाग गई। सिंघो ने उनका पीछा किया किन्तु जत्थेदार ने उन्हें तुरन्त वापस आने का आदेश भेजा। उन का विचार था कि हमें समय की नज़ाकत को ध्यान मे रखते हुए अपने घायलों की सेवा पहले करनी चाहिए। उसके बाद जीते हुए सैनिकों की सामग्री कब्जे में लेना चाहिए। इस के बाद शहीदों को सैनिक सम्मान के साथ अंतिम संस्कार उनकी रीति अनुसार करने चाहिए।

यह ऐतिहासिक विजय 12 मई सन् 1710 को दल खालसे को प्राप्त हुई। इस समय दल की कुल संख्या 70 हजार के लगभग थी। इस युद्ध में 30 हजार सिंह काम आये और लगभग 20 हजार घायल हुए। लगभग यही स्थिति शत्रु पक्ष की भी थी। उनके गा़जी अधिकांश भाग गये थे। युद्ध सामग्री में सिंघों को 45 बड़ी तोपे, हाथी, घोड़े व बंदूके बड़ी संख्या मे प्राप्त हुई।

नवसिखिये सैनिक जो भाग गये थे। उनमें से अधिकांश लौट आये और जत्थेदार से क्षमा मांग कर दल में पुन: सम्मिलित हो गये। जत्थेदार बंदा सिंह ने खालसे-दल का जल्दी से पुनर्गठन किया और सभी को सम्बोधन कर के कुछ आदेश सुनाये :-

] कोई भी सैनिक किसी निर्दोष व्यक्ति को पीड़ित नहीं करेगा।

2. कोई भी महिला अथवा बच्चों पर अत्याचार व शोषण नहीं करेगा। केवल दुष्ट का दमन करना है और गरीब की रक्षा करनी है। इसलिए किसी की धार्मिक भवन को क्षति नहीं पहुचानी है।

3. हमारा केवल लक्ष्य अपराधियों को दण्डित करना तथा दल खालसा को सुदृढ करने के लिए यथाशक्ति उपाय है।

14 मई को दल खालसे ने सरहिन्द नगर पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने सूबे वजीद खान का शव साथ में लिया और उस का प्रदर्शन करने लगे। इस बीच बजीद खान का बेटा समुंद खान सपरिवार बहुत सा धन लेकर दिल्ली भाग गया। उसे देखते हुए नगर के कई अमीरों ने ऐसा ही किया क्योकि उन्हें ज्ञात था कि शत्रु सेना के साथ अब मुकाबला हो नहीं सकता। अत: भागने में ही भलाई है। जन साधारण भी जानते थे कि दल खालसा अब अवश्य ही सरहिन्द पर कब्जा करेगा।

उस समय फिर रक्तपात होना ही है अत: कुछ दिन के लिए नगर छोड़ जाने में ही भलाई है। इस प्रकार दल खालसे के सरहिन्द पहुंचने से पहले ही नगर में भागम भाग हो रही थी। दल खालसा को सरहिन्द में प्रवेश करने में एक छोटी सी झड़प करनी पड़ी। बस फिर आगे का मैदान साफ था। सिंघों ने वजीद खान का शव सरहिन्द के किले के बाहर एक वृक्ष पर उल्टा लटका दिया, उसमें बदबू पड़ चुकी थी। अत: शव को पक्षी नौचने लगे। किले में बची-खुची सेना आकी होकर बैठी थी। स्वाभाविक था वे करते भी क्या? उनके पास कोई चारा नही था। दल खालसा ने हथियाई हुई तोपों से किले पर गोले दागे, घण्टे भर के प्रयत्न से किले में प्रवेश का मार्ग बनाने में सफल हो गये। फिर हुई हाथों-हाथ शाही सैनिकों से लड़ाई। बंदा सिंह ने कह दिया "अड़े सो झड़े, शरण पड़े सो नरे" के महा वाक्य अनुसार दल खालसा को कार्य करना चाहिए। इस प्रकार बहुत से मुग़ल सिपाही मारे गये। जिन्होने हथियार फैंक कर दल खालसा से पराजय स्वीकार कर ली; उनको युद्ध बन्दी बना लिया गया।

दल खालसा के सेना नायक बंदा सिंह ने विजय की घोषणा की और अपराधियों का चयन करने को कहा। जिससे उन्हें उचित दण्ड दिया जा सके परन्तु कुछ सिंघो का मत था कि यह नगर गुरू शापित है अत: इसे हमें नष्ट करना है। किन्तु बंदा सिंह इस बात पर सहमत नहीं हुआ। उनका कहना था कि इस प्रकार निर्दोष लोग भी बिना कारण बहुत दुख झेलेगें जो कि खालसा दल अथवा गुरू मर्यादा के विरूद्ध है। बंदा सिंह की बात में दम था अत: सिंह दुविधा में पड़ गये। वे सरहिन्द को नष्ट करना चाहते थे। इस पर बंदा सिंह ने तर्क रखा हमें अभी शासन व्यवस्था के लिए कोई उचित स्थान चाहिए। इस बात को सुनकर कुछ सिंह आकी को गये। उन का कहना था सरहिन्द को सुरक्षित रखना गुरू के शब्दों में मुंह मोड़ना है। इस पर बंदा सिंह से अपनी राजधानी मुखलिस गढ़ को बनाने की घोषणा की। सरहिन्द से मिले धन को तीन सौ बैल गाड़ियों में लाद कर वहां पहुंचाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। तद्पश्चात इस गढ़ी का नाम बदल कर लौहगढ़ कर दिया और इसका आगामी युद्धों को ध्यान में रखते हुए आधुनिकीकरण करने का कार्यक्रम बनाया।

मलेरकोटला पर आक्रमण

शत्रु पर विजय प्राप्ति की दृष्टि से खालसा दल के नायक बंदा सिंह बहादुर ने अगला कदम मलेरकोटला की ओर बढाया। यहां के नवाबों ने श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी पर शाही सेना की ओर से बढ़-चढ़ कर आक्रमण किये थे। भले ही गुरूदेव के सपुत्रों की हत्या करवाने में उन का कोई हाथ नहीं था। इस समय उस परिवारके सभी पुरूष सदस्य गुरूदेव के हाथों अथवा छप्पड़ चीरी के रणक्षेत्र मे मारे जा चुके थे। जब दल खालसा मलेरकोटला पहुंचा तो वहां की स्थानीय जनता रक्तपात होने के भय से कांप उठी, उन्होंने तुरन्त अपना एक प्रतिनिधि मण्डल बहुत बड़ी धन राशि नज़राने के रूप में देकर दल खालसा के नायक बंदा सिंह के पास भेजा। बंदा सिंह इस नगर को किसी प्रकार की क्षती पहुंचने के पक्ष में नहीं था क्योकि उसे ज्ञात हो गया था कि यहां के नवाब शेर मुहम्मद खान ने गुरूदेव के दोनों छोटे सुकुमारों की हत्या का विरोध किया था। साहबजादों के प्रति दिखाई सहानुभूति के कारण किसी प्रकार के प्रतिशोध का प्रश्न ही नहीं उठता था। अत: वह प्रतिनिधि मण्डल से बहुत सद्भावना भरे वातावरण में मिले और नज़ारने स्वीकार कर लिए, इस प्रतिनिधि मण्डल में एक स्थानीय साहुकार किशन दास ने बंदा सिंह को पहचान लिया। लगभग दस वर्ष पूर्व एक बैरागी साधु के रूप में अपने गुरू रामदास के साथ माधो दास के नाम से उनके यहां जो व्यक्ति ठहरा था, वह यही बंदा सिंह बहादुर है। इस रहस्य के प्रकट होते ही भय-प्रसन्नता में प्रवृत हो गया और सभी आपस में घुल मिल गये। तभी बंदा सिंह जी ने स्थानीय प्रतिनिधि मण्डल को वचन दिया यदि यहां के शासक हमारी अधीनता स्वीकार कर लें तो यहां किसी का बाल भी बांका नहीं होने दिया जायेगा। तभी उन को बताया गया कि दल खालसा के आने की सूचना पाते ही वहां का फौजदार भाग गया है।

अनूप कौर का कंकाल बरामद

मलेरकोटले पर नियन्त्रण हो जाने पर दल खालसा के नायक बंदा सिंह बहादुर को मालुम हुआ कि यहां के नवाब शेर मुहम्मद खान ने दिसम्बर 1704 की लड़ाई मे एक सिख स्त्री श्रीमती अनूप कौर को बन्दी बना लिया था। यह महिला अनंदगढ़ खाली करते समय काफिले से बिछड़ गई थी। इस महिला ने अपने नारीत्व सुरक्षित रखने के लिए आत्महत्या कर ली थी। इस पर शेर मुहम्मद खान ने बदनामी के भय से उस का शव अपने महलों के पास ही दफन करवा दिया था। अत: बंदा सिंह उस सिख स्त्री के कंकाल की खोज करवाने लगे। उन्होंने इस कार्य के लिए कई कबरे खुदवाई अन्त में उन्हें वह कंकाल मिल ही गया। जिस का उन्होंने विधिति सिख परम्परा अनुसार दाह संस्कार सम्पन्न किया ।

राम राय सम्प्रदाय की मरम्मत

राम राय सम्प्रदाय के सिख श्री गुरू गोबिंद सिंह जी द्वारा चलाई गई अमृतधारण करने की प्रथा का उपहास करते है और पाँच ककारी सिंहों की खिल्ली उड़ाते है। जब यह जानकारी दल खालसा के नायक बंदा सिंह को गुरूघर के कीर्ततीय बुलाका सिंह द्वारा दी गई तो वह गुरू की निंदा सहन नहीं कर सके उन्होंने तुरन्त एक सैनिक टुकड़ी घुड़ाणी ग्राम भेजी और पंथ विरोधियों की मरम्मत की। साथ ही बुलाका सिंह को वहां का स्थानीय थाने का थानेदार नियुक्त कर दिया। यहीं पर धर्मकोट तथा अन्य क्षेत्रों के चौधरियों ने बंदा सिंह को नजराने पेश किये

जत्थेदार बंदा सिंह बहादुर की शासन प्रणाली

दल खालसा के सेना नायक बंदा सिंह ने समस्त विजयी क्षेत्र को प्रशास्निक व्यवस्था के लिए अलग-अलग योग्य पुरूषों में बांट दिया। सतलुज नदी से यमुना नदी तक का क्षेत्र सरहिन्द सूबे में पड़ता था। यह प्रांत 28 परगनों में विभाजित था। जिसका संचालन मुस्लिम अधिकारी करते थे। सरहिन्द की विजय से यह समस्त परगनें स्वयं ही बंदा सिंह की छत्रछाया में आ गये थे। अतः बंदा सिंह सरहिन्द का राज्यपाल (गवर्नर) नियुक्त किया और उस की सहायता के लिए आली सिंह को उसका नायब बनाया गया। समाणा और उसके निकट के क्षेत्रों को जो कि धानेसर के समीप थे फतेह सिंह को नियुक्त किया। इस प्रकार पानीपत व करनाल क्षेत्र सरदार बिनोद सिंह को सौंप दिये। सढौरा तथा नाहन के बीच गांव आमुवाल की सीमां में मुखलिसगढ़ को जो कि एक ऊँचे-नीचे टीलों व खड्डों से घिरा था, दल खालसा की राजधानी बनाया और इस किले का नाम लोहगढ़ धर दिया। इसी किले को खालसे की अगली गति-विधियों के लिए स्थाई केन्द्र बनाया।

अनुमान लगाया जाता है कि दल खालसा को तीन करोड़ रूपये की धन राशी सरहिन्द विजय के समय हाथ लगी थी जो कि इसी किले में सुरक्षित रखी गई और यहीं से गुरू नानक देव व गुरू गोबिंद सिंह जी के नाम पर फारसी अक्षरों में अंकित स्वर्ण के सिक्के जारी किये। जिन पर निम्नलिखित इबारत छपी हुई है।

"सिक्का मारिया दो जहान उते,

बख्शिश बख्शिआ नानक दी तेग ने जी।

फतेह शाहे-शाहान गुरू गोबिंद सिंह दी,

मिहरां कीतियां रब्ब इक ने जी।

जमीदारी प्रथा का उन्मूलन- बंदा सिंह बहादुर ने एक अध्यादेश जारी करके घोषणा करवाई। भूमि जोतने वाले किसान ही वास्तविक भूमि के स्वामी होगे और बीचौलियों अर्थात् जमींदारी प्रथा समाप्त की जाती है। इस के साथ ही किसानों को जमींदारो के जुल्मों-सितम (अत्याचारों) से बचानें के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया और कहा किसान बहू संख्या में है अतः वे अपने हितों की रक्षा स्वयं अपने बाहूबल के सहारे करें। इस प्रकार किसान ने प्रशासन से प्रेरणा पा कर जमींदारों को सदा के लिए खदेड़ दिया और स्वयं अपनी भूमि के स्वामी बन गये। विश्व इतिहास में पहली बार जमींदारी प्रथा का अंत बंदा सिंह बहादुर के सत्तारूढ़ होने पर पंजाब में हो गया।

यमुना-गंगा के मध्य के क्षेंत्रो पर विजय

सरहिन्द व उसके परगनों की विजय ने बंदा सिंह बहादुर को मुग़ल प्रशासन से तंग आये हुय लोगों में एक मुक्ति दिलवाने वाले महापुरूष के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब से दूर-दूर क्षेत्रों के लोग उनके झंडे तले एकत्रित होने के लिए उनके पास आ पहुंचे।

सरदार कपूर सिंह प्रचारक ने समाचार भेजा देउबंद(उत्तर प्रदेश) का फौजदार, गांव ऊनारसा में नये सजे सिंघों पर अत्याचार कर रहा है। बस फिर क्या था यह सुनते ही जत्थेदार बंदा सिंह ने अपने सैन्य बल को यू० पी० की ओर भेज दिया। सिक्खों ने सहारनपुर के फौजदार वली खान कनौजी सैय्यद को एक पत्र लिखा कि वह खालसे की अधीनता स्वीकार कर ले तो उसे कुछ न कहा जाएगा। परन्तु वह सिक्खों के यमुना पार आने का समाचार सुनकर ऐसा भयभीत हुआ कि वह वहां से अपना धन माल समेट कर सपरिवार उसी रात दिल्ली भाग गया। इस प्रकार एक छोटी सी झड़प के पश्चात् सहारनपुर सिक्खों के हाथ आ गया। सिक्खों का सहारनपुर में जाने का मुख्य लक्ष्य इस्लाम के नाम पर अन्य मतावलम्बियों पर जो अत्याचार हो रहे थे, उनकी रोकथाम करना था। अतः स्थानीय हिन्दू जनता ने खालसे को अपने बहुत से कष्ट बताए। बिहत क्षेत्र के हिन्दुओ ने बताया कि वहां के स्थानीय पीरजादे खुले बाज़ारों में गो वध कर के हिन्दू जनता का परिहास करते हैं। इस क्षेत्र के दुष्टों को खालसे ने उचित दण्ड दिये और उनकी तोबा करवा दी।

यमुना पार के अधिकांश किसान हिन्दू गुर्जर थे; स्थानीय फौजदार इनका शोषण करते रहते थे। इन लोगों ने घोषणा की कि हम नानक

पंथी है। हमें दल खालसा अपनी शरण में ले ले। इस प्रकार बहुत से गुर्जर दल खालसा में सम्मिलित कर लिये गये। दल खालसा ने सभी आस-पास के क्षेत्रों में अपनी सैनिक टुकड़ियां भेजीं और प्रत्येक प्रकार के अपराधियों को दण्डित किया। इसी अभियान में बुडियां क्षेत्र सिक्खों के कब्जे में आ गया।

खालसा का अगला कदम जलालाबाद के बागी फौजदार को ठीक करना था। अत: उससे पहले रास्ते में पड़ते नानौता की जब बारी आई तो स्थानीय गुर्जरों ने दल खालसे का साथ दिया। इस नगर में स्थानीय फौजदार से भंयकर युद्ध हुआ इस प्रकार इस नगर को भारी क्षति उठानी पड़ी। जिससे उस का नाम फूटा शहर हो गया।

जलालाबाद के फौजदार ने सिक्खों के विरोध में भारी तैयारी कर रखी थी। अत: यहां सिक्खों को कड़ा सामना करना पड़ा। इसी प्रकार सिक्खों ने अंबहेता क्षेत्र पर भी अधिकार कर लिया। परन्तु आस-पास के मुस्लमानों ने जहाद का नारा लगाकर जनसाधारण को सिक्खों के विरूद्ध इक्ट्ठा कर लिया। यहां पर जलाल खान के पौत्र गुलाम मुहम्मद से भयंकर मुठभेड़ हुई। जेहादियों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण सिक्खों को यहां से पीछे हटना पड़ा।

दल खालसा ने जलालाबाद के फौजदार जलाला खान को पत्र लिखा कि वह अनारसा में कैद किये गये सिक्खों को छोड दे और खालसे के साथ संधि कर लें, परन्तु उसने खालसे के साथ संधि न की। इस पर दल खालसा ने जलालाबाद किले को घेरे में ले लिया परन्तु अन्दर पर्याप्त मात्र में युद्ध सामग्री एकत्रित की हुई थी। इस लिए घेरा बन्दी लम्बे समय तक खींचती चली गई। युद्ध का अन्त होता न देखकर दल खालसा ने घेरा उठा लिया और जल्दी वापस करनाल क्षेत्र में लौट आये क्योंकि बहादुर शाह स्वयं पंजाब की बगांवत को कुचलने के लिए समस्त शाही लश्कर लेकर आ रहा था ।

माझा क्षेत्र पर विजय तथा हैदरी झण्डा

सरहिन्द में विजय के समाचार पहुंचते ही सारे देश में सिक्खों का साहस बढ़ गया और उनमें स्वतन्त्रता की भावना जागृत हो उठी। सिक्ख अब यह समझने लगे कि परमात्मा स्वयं उन्हें विजय तथा राज्य प्रदान कर रहा है तथा मुग़लों का तेज अस्त होने वाला है। बंदा सिंह को सत्गुरू ने स्वयं भेजा है तथा उसके सम्मुख जो अड़ेगा वह नष्ट होगा। इस समय बंदा सिंह के संदेश जो वह श्री गुरू गोबिंद सिंह जी के हुक्म नामे के साथ भेजता था, स्थान-स्थान पर सिक्खों को एक झण्डे के नीचे इक्ट्ठा करने में सहायक सिद्ध होने लगा ।

रियाड़की तथा माझा क्षेत्र के आस-पास के आठ हजार के लगभग सिक्ख अमृतसर में एकत्रित हुए और उन्होंने गुरूमत्ता किया (सिक्खों की पंचायत का प्रस्ताव)। सिक्खों का इस समय का मनोबल और आवेश एक अकस्मात फूटे ज्वालामुखी पर्वत की भांति था, जिसका पिघला हुआ लावा इतनी तेजी से बहा कि सब कुछ बहा कर ले गया। उन्होंने स्थानीय अधिकारियों को बर्खास्त करके प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। अपनी तहसीलें तथा थाने स्थापित कर लिये।

पहले-पहल उन्होंने लाहौर तथा कसूर क्षेत्र के परगनों को छेड़ना उचित नहीं समझा। लाहौर तो प्रान्त की राजधानी और सरकारी शक्ति का केन्द्र था और कसूर खेशगी पठानों का गढ़ था। आरम्भ में इन पर आक्रमण करना खतरे से खाली न था। इसलिए सिक्ख सर्वप्रथम रियाडकी की ओर बढे। बटाला और कलानौर नगरों पर धावा बोल कर सत्ता पर अधिकार कर लिया। ये नगर उन दिनों बहुत समृद्ध माने जाते थे। इन नगरों पर विजय प्राप्ति से सिक्खों को पर्याप्त धन उपलब्ध हुआ। सिक्खों के इस उत्थान से स्थानीय मुल्ला, मौलाने, काज़ी अथवा सरकारी अधिकारी दमन चक्र की लपेट में आ गये, उनमें अधिकांश से जनता बहुत दुखी थी। इन लोगों ने भाग कर लाहौर में शरण ली। इस प्रकार सिक्खों का एक दल लाहौर नगर के शालीमार बाग तक जा पहुंचा और नगर की सीमा तक अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया।

लाहौर का हाकिम असलम खान कुछ डरपोक स्वभाव का स्वामी होने के कारण शांत रहा, परन्तु मौलवियों तथा मुल्लाओं को सिक्खों की शक्ति का उभरना अपने लिए खतरे की घंटी लगने लगा। उन्होंने मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को उकसाने के लिए जेहाद (इस्लाम खतरे में है) का नारा लगाया। ईदगाह मसीत के पास हैदरी झंडा गाड़ दिया गया। मीर तक्की तथा मुसा बेग ने अगवाई की। इन्होंने अपना घर तथा माल असबाब बेच कर सैनिको के लिए, घोड़ों तथा फौजी सामान का प्रबंध किया। खोजा जाति के लोगों तथा धनाढय व्यापारियों ने खुलकर आर्थिक सहायता की। गाज़ी सैयद ईसमाइल, गाज़ी बार बेग, शाह इनायत तथा समस्त मुल्लां पीरों ने भी इस जेहाद में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। स्थानीय हिन्दुओं में महत्वपूर्ण नेता टोडर मल का पौत्र जिसका पिता पहाड़ा मल था। उसने अपनी राज्य भक्ति प्रदर्शित करने के लिए घोषणा की कि जिन जहादियों के पास सैनिक सामग्री अथवा खर्च के लिए पैसे न हो वह मुझ से ले ले या उसकी ओर से नौकर होकर जहादियों में मिल जाए। नवाब असलम खान को उसने अपनी ओर से कुछ तोपें तथा बन्दूकें भी भेट की। अंत मे जब सैय्यद असलम खान ने महसूस किया कि लोगों में उसकी बहुत निंदा हो रही है, तो उसने पूर्व एक नेता मीर अता-उल्ला (तरावड़ का राजपूत इनाय तुल्ला) तथा फरीदाबाद के जमींदार मुहब्बत खान खरल के नेतृत्व में पांच सौ घोडसवार और एक हज़ार प्यादों की सेना देकर गाजियों की सहायता के लिए नियुक्त किया। इस प्रकार जेहादी (गाज़ियों) लुटेरों तथा प्रान्त की सेना का विशाल दल एकत्रित हो गया, जो कि हैदरी झण्ड़े लेकर अली के नाम के नारे लगाते चल पड़े।

दूसरी तरफ सिक्ख संख्या में बहुत कम थे, और जो थे भी वे टुकड़ियों में बिखरे हुए थे। जेहादियों की अपेक्षा उनकी संख्या आटे में

नमक के समान थी। अतः प्रत्यक्ष मुठभेड़ उनके लिए कठिन थी। उन्होंने समय टालना ही उचित समझा। इसलिए वे काहनुवाल नामक घने जंगली क्षेत्र में जा घुसे। इन झाड़ियों व जंगलों से सिक्ख भली भांति परिचित थे। यहां अनाज और पेयजल की अवश्य ही कठिनाई थी परन्तु शिकार से प्राप्त मांस मछली से उनका गुजर वसर होता रहता था। इसके विपरीत लाहौर के जेहादियों को इन कठिन परिस्थितियों में रहने का अभ्यास नहीं था। वह शहरी नागरिक होने के कारण कोमल शरीर वाले थे। अतः उन्होंने कांटेदार झाडियों तथा घने जंगलों में घुसने का प्रयास किया भी तो वे बुरी तरह असफल हुए क्योंकि जंगलों मे छिपे हुए सिक्खों ने बुरी तरह परास्त किया और भागने पर विवस कर दिया। अतः अन्य कहीं जोर न चलता देख, जेहादी गांवों में जा घुसे और वहां के स्थानीय हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगे। माझा का क्षेत्र क्योंकि लाहौर के निकट पडता था, इसलिए अधिकतर हिन्दुओं पर दुर्व्यवहार यहीं पर होने लगा। जेहादी यह कह कर यहां के हिन्दुओं को तंग करने लगे कि इन्होंने ही अपने पुत्रों के सिक्ख बना कर प्रशिक्षण दिलवाकर सिक्ख सेना खड़ी की है। जब सिक्खों को इस कठोर व्यवहार का पता चला तो वे अत्यन्त क्रोधित हो उठे और सोचने लगे कि यदि हमारे बदलें हमारे माता-पिता को अपमान सहना पड़ रहा है तो हमारे जीवन को धिक्कार है, इसलिए उन्होने अवसर मिलने पर झाडियों जंगलो में से निकल कर जहादियों पर छापे मारने आरम्भ कर दिये। ज्यों-ज्यों वे सिक्खों को खोज-खोज कर मारते थे, त्यों-त्यों सिक्ख भी तेज हो रहे थे तथा जेहादियों को मौत के घाट उतारते जाते थे। छापा मारने के बाद सिक्ख फिर से जंगलों में जा छिपते और जेहादियों की पहुंच से दूर हो जाते। इन कठिन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सिक्खों ने अपने को चार दलों में विभाजित कर लिया। एक दल लाहौर तथा अमृतसर के क्षेत्र के मध्य में विचरण करेगा। दूसरा रियसड़की में पर्वतों के निकट गुरूदासपुर-पठानकोट की ओर विचरण करते रहेगें, तीसर लाहौर नगर के बिल्कुल आस-पास रहे और चौथा जेहादी तुर्को के इर्द-गिर्द रहे, यदि कोई दल अकेला विपत्ति में फंस जाये तो अन्य दल समय पर आकर उन की सहायता करें। ये दल दो सौ से चार सौ के बीच की संख्या में जवान रखते थे और इन की गिनती घटती-बढ़ती रहती थी।

एक बार लाहौर नगर के निकट का सिक्खों का दल रावी नदी के तट पर घुमता हुआ भरत नामक गांव के पास आ निकला। परगना नेरटा-भरली के कानूनगां महता भगवंत राय ने यहां दरिया के किनारे अपनी हवेली बनवा रखी थी। इतिहासकारों ने इसका नाम किला भगवंत राय लिखा है। वर्षा होने के कारण केवल समय काटने के लिए सिक्ख हवेली में जा घुसे। सिक्खों के यहां होने का समाचार लाहौर की सेना के एक हजार सवारों के एक दल को मिला। शायद वे भी सिक्खों की खोज में भटकते हुए उधर ही आ निकले होंगे। उन्होंने तुरन्त हवेली को घेर लिया और यदि कोई अकेला-सिक्ख उन्हें बाहर मिल गया तो उन्होंने उसे वहीं समाप्त कर दिया। हवेली में सिक्खों के घिर जाने का समाचार सुनकर हजारों अन्य जेहादी भी यहां आकर एकत्रित हो गये और घेरा इतना पक्का कर दिया कि सिक्खों के लिए बाहर निकल सकना कठिन हो गया। जेहादियों ने मुंडेरे तथा दीवारों बना कर ऊपर तोप आदि चढ़ा दी और हवेली पर आग बरसाने लगें। इस प्रकार सिक्ख विपत्ति में फंस गयें परन्तु उन्होंने डट कर सामना करने की ठान रखी थी। उन्होंने बुर्जियों, मुंडेरों और दीवारों के ऊपर से शत्रु पर वार करने शुरू किये और जब कभी अनाड़ी जेहादियों ने दीवार फांदने के लिए हाथ डाले तो सिक्खों ने तलवारों के साथ उन्हें भूमि पर सदा के लिए सुला दिया। इस प्रकार दोनों ओर पर्याप्त हानि हुई। परन्तु किसी ओर से भी ढील पड़ती दिखाई न देती थी। जहादी-गाजियों के लिए दीवार पार कर भीतर जाना कठिन था। जिससे वे सिक्खों को पकड़ सकें। इसी प्रकार सिक्खों के लिए घेरा तोड़ कर बाहर निकलना और जेहादियों को भगा देना कठिन था। घेराव लम्बा चलने से सिक्खों की खाद्य सामग्री समाप्त होने लगी। अतः उन्होंने विचार किया कि उनका हवेली से निकल जाना ही उचित रहेगा। एक रात वर्षा और अंधेरे का लाभ उठाते हुए सिक्ख हवेली के बाहर डटे हुए जेहादियों को चीरते फाडते क्षण भर में निकल भागे। शिकार हाथ से निकल जाने से जहादी निराश हो हाथ मलते रह गए। परन्तु अपनी असफलता को छिपाने के लिए वे वीर विजेताओं की भांति खुशियां मनाते हुए लाहौर लौट गये। परन्तु वे भीतर-ही-भीतर नाकामी की खीझ निकालने के लिए नगर के हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगे और अपने शासकों का अपमान कर उनको ही धमकाने लगे।

मुहम्मद कासिम अपनी पुस्तक 'इबरतनामे' मे लिखता है-जेहादियों की जमात में से कुछ एक ओछे तथा मूर्ख लोगों ने जिन में जन्म-जन्मांतरों की नीचता विद्या के बड़प्पन से भी दूर नहीं हुई थी और जो झूठे मज़हबी अभिमान से पागल हुए पड़े थे, ने शहर के हिन्दुओं के साथ बहुत कमीनी तथा नीच हरकतें की और सरकारी हाकिमों का भी अपमान करवाया ।

उन ही दिनों दूसरी बार फिर लाहौर से कुछ कोस दूर चम्यारी नगर के निकट कोटला बेग़म में बहुत बड़ी संख्या में सिक्खों का एक दल एकत्र हो गया और वे स्थानीय लोगों से लगान इत्यादि वसूल करने लगे। इसका पता चलने पर मौलानों ने पुनः जेहाद का ढोल बजवा दिया। देखते-ही-देखते चींटीयों तथा टिड्डी दल की भांति एक बहुत बड़ा लश्कर तैयार होकर सिक्खों के विरूद्ध कोटला बेगम की ओर चल पड़ा और मार्ग में जो भी गांव पडें उन सभी को बदले की आग में जलाते हुए जहादियों ने लूट-मार करके नष्ट कर दिये। इस प्रकार गरीब जनता पर खूब अत्याचार किये। इन अत्याचारों को देखकर जेहादी लश्कर के नेता भी त्राहि-त्राहि कर उठे। इसलिए उन्होनें भीलेवाल गांव के पास दो-तीन जहादियों (गाज़ीयों) को तलवार से काटकर मृत्यृदण्ड दिया। तब भी सामान्य जहादियों पर इस का अधिक प्रभाव न पड़ा। वे फिर भी लूट-मार करते रहे और उदण्डता मचाते रहे। जब तक कि वे कोटला बेगम के किले की दीवारों के पास सिक्खों के सम्मुख न पहुंच गये।

इस बार जेहादियों को वहां पहुंचा देखकर सिक्ख उनका स्वागत करने के लिए बन्दूके लेकर बाहर निकल आये और गोलियों और तीरों की वर्षा से बहुतों के पांव उखाड़ दिए। अनेक को तलवार के घाट उतार दिया। इस प्रकार भीषण युद्ध में सिक्खों ने नंगे खड़ग की चमक ने अधिकांश जेहादियों को चकरा दिया और रणक्षेत्र से भागने पर विवश कर दिया। बहुत घमासान युद्ध हुआ और दोनों पक्षों के शूरवीर रणभूमि

में काम आए। चारों ओर शव दिखाई देने लगे। बहुत बडी संख्या में जानी नुक्सान हुआ। युद्ध में एक ऐसा समय भी आया जब परिणाम डांवाडोल था। परन्तु सिक्ख सामान्यत: पराजय की लड़ाई में भी विख्यात है। इस कठिन समय में उन्होंने बहुत वीरता से आगे बढ़कर एक ऐसा जोरदार आक्रमण किया कि जेहादियों की पंक्तियां टूट गई और वे डगमगा कर पीछे हटने लगे। अफगान घोड़सवार भी सिक्खों से लोहा न ले सकें। भगदड़ में अपने घोड़ों की लगाम पीछे मोड़ ली और रणक्षेत्र से भागने में ही भलाई समझी। जैसे ही घुड़सवार पीछें हटे फिर जेहादियों का धैर्य टूट गया। वे मुड़ संभल न सके और देखते-देखते टूटे हुए साहस के कारण बिखर गये। उनके नेता उनको अल्ली के नाम की कसमें देते और ललकारते रहे। असंख्य ग़ाज़ी मैदान में मारे गये और अनेकों ने कायरों की तरह भागते हुए प्राण बचाए। जहादी निराश उदास लाहौर की ओर लौट रहे थे, परन्तु इनका दुर्भाग्य अभी भी समाप्त न हुआ। मार्ग में रात काटने के लिए वे भीलोवाल गांव में टिक गए। सरकारी सेना के सिपाही तो किले में चले गए तथा शेष अवैतनिक सिपाही (ग़ाज़ी) सिक्खों की ओर से निश्चिन्त होकर खुले मैदान में सो गये। दूसरी ओर सिक्ख अंधकार का लाभ उठाकर इनके पीछे धीरे- धीरे चल निकले थे ताकि इनके लाहौर पहुंचने से पूर्व ही एकाध चोट और कर सकें। सिक्ख भीलोवाल के निकट पहुंच कर गांव से बाहर ही झाड़ियों में छिप गए, जैसे ही प्रात: काल हुआ, सूर्य उदय होने से पूर्व झाडियों में से निकल कर अकस्मात् जेहादियों पर टूट पड़े। जेहादियों को सभलने का सिक्खो ने अवसर ही नहीं दिया। इससे पहले की वे लड़ाई के लिए तैयार होते उससे पहले ही बहुत जेहादी मारे गये, जो बचे, जिसे जिधर का मार्ग दिखाई दिया, वह उधर ही भाग निकला। सिक्खों के पास शत्रुओं से प्रतिकार के लिए यह एक अद्वितीय अवसर था। जिसका उन्होंने अधिकाधिक लाभ उठाया और जेहादियों (ग़ाज़ियों) की सदा के लिए कमर तोड़ दी।

भीलोवाल के इस युद्ध में जेहादियों और सिक्खों की हानि का कोई ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जहादियों के अधिकांश जवान मारे गए और उनका माल व घोड़े सिक्खों के हाथ आये। नेताओं में मुर्तज़ा खान और टोडरमल का पौत्र यहीं मारे गये। इस विजय से सारे प्रदेश में सिक्खों का बोल-बाला हो गया। इस प्रकार केवल एक मात्र लाहौर नगर को छोड़कर लगभग सारे माझा और रियाड़की क्षेत्र पर सिक्खों के घोड़े घूमने लगे। मुल्लाओं ने कई बार पुन: ईमान के नाम पर मुसलमनों को उकसाने का प्रयत्न किये और सिक्खों से प्रतिशोध लेने के लिए ललकारा, परन्तु उनकी बात किसी ने न सुनी।

जालन्धर, दोआबा क्षेत्रों पर अधिकार और राहों (राहोन) पर विजय

दोआबा क्षेत्र (जालन्धर, होशियारपुर तथा कांगड़ा) इत्यादि जिलों में भी सिख माझा क्षेत्र की तरह जगह-जगह पर स्वतन्त्रता के लिए उठ खड़े हुए। वे लोग जो सरकारी कर्मचारियों से परेशान थे, सिक्खों के साथ हो लिए। क्रांति की लहर चारों ओर फैल गई। कुछ सप्ताहों में ही दोआबा के अनेक स्थान पर अपने तहसीलदार और थानेदार नियुक्त कर दिये गये। केवल एक पलटन सिक्ख सैनिकों की सरहिन्द विजय करने के पश्चात् वहां से पहुंची थी, बाकी के जवान स्थानीय सिक्ख परिवारों के ही थे। परन्तु उथल-पुथल की दृष्टि से वे अपनी संख्या के कहीं अधि क बड़े कार्यो को करनें में संघर्षरत थे।

इन दिनों सुलतानपुर लोधी नगर का फौजदार शम्स खान था। जब सिक्खों को जालन्धर (दोआबा) के क्षेत्र में पर्याप्त सफलता मिल गई जिससे उनकी शक्ति बढ़ गई तो उन्होंने स्वयं फौजदार शम्स खान को भी चुनौती दी। उनकी यह परम्परा थी कि जब भी किसी क्षेत्र पर आक्रमण करना होता तो पहले वहां के प्रशासक अथवा चौधरी को अधीनता स्वीकार करने के लिए पत्र लिखते। यदि वह उनकी बात स्वीकार कर उनसे मिल जाता तो ठीक, अन्यथा धावा बोल दिया जाता। इसी के अनुसार सिक्खों ने शम्स खान को भी पत्र लिखा कि वह अपने क्षेत्र की व्यवस्था में अपेक्षित सुधार लायें, अधीनता स्वीकार करले तथा खजाना लेकर उपस्थित हो जाये। इस पर शम्स खान ने अपने बड़े-बड़े सरदारों से परामर्श किया। उन सब ने कुरान मर्जाद को मध्य में रखकर विश्वास पात्र रहने तथा सहयोग देने की कसमें (सौगन्ध) ली और डट कर सिक्खों का सामना करने का दृढ निर्णय किया, परन्तु शम्स खान भीतर ही भीतर भयभीत था कि इन्कार सुनकर सिक्ख कहीं अचानक ही आक्रमण न कर दें। अत: तैयारी के लिए समय लेने हेतु उसने सिक्खों को गोलमोल शब्दों में उत्तर भेज दिया कि मैं शीघ्र ही मिलने के लिए आऊँगा। इसके साथ ही उसने कुछ गोला-बारूद भी भेजा और लिखा कि इस समय बैल गाड़ियों का प्रबन्ध न होने के कारण मैं आप की मांग अनुसार माल भेजने में असमर्थ हूं। यहां बाजार में व्यापारियों के पास और सरकारी गोदामों में पर्याप्त मात्रा में बारूद विद्यमान है, यदि भेजने की व्यवस्था हो तो भेजा जा सकता है।

शम्स खान चतुर व्यक्ति था। उसने छल-कपट का सहारा लिया। उसे विश्वास था कि यदि ईमान के नाम पर इलाके की जनता को बुला भेजे तो पर्याप्त संख्या में मुसलमान लोग सिक्खों के विरूध एकत्रित हो जाएगे। इसलिए उसने जेहाद का ढोल बजवा दिया तथा हैदरी झण्डा गाड़ दिया। जहाद की चुनौती से सीधे-सादे मुसलमानों, विशेष कर किसानों और जुलाहों पर काफी प्रभाव पड़ा। इन लोगों ने प्रशासन को आर्थिक सहायता भी दी और स्वंय धर्म युद्ध में शहीद होने के लिए (कुरान मजीद) ईश्वरीय वाणी मध्य में रख कर परस्पर वचनबद्ध होकर एकत्रित हो गये। फौजदार शम्स खान के पास पांच हज़ार घोड़सवार तथा तीस हजार प्यादे तोपची तथा अन्य शस्त्रों के प्रवीण वैतनिक सेना थी। इस प्रकार आधा लाख से अधिक लश्कर लेकर बहुत शक्तिशाली बनकर सुलतानपुर से चल पड़ा।

दूसरी ओर सिक्ख प्रसन्न थे कि शम्स खान का अधीनता स्वीकार करने का पत्र आ गया है, यदि शम्स खान स्वंय उपस्थित होकर एक विशेष संधि के अंतरगत अधीनता स्वीकार कर लेता है, तो शेष इस क्षेत्र के प्रशासनिक अधिकारी स्वयं ही खालसे के झण्डे के नीचे आ

जायेगे। परन्तु उन्हें वास्तविकता की भनक तब मिली जब उन्हें ज्ञात हुआ कि शम्स खान ने जहाद का ढोल बजा कर आधा लाख व्यक्ति इकट्ठे कर लिए है और वह उन्हें साथ लेकर चल पड़ा है। सिक्खों ने सारी सूचनाएं बाबा बंद सिंह बहादुर को लिख कर भेजी और जल्दी सहायता भेजने के लिए लिखा।

इस नाजुक समय में सिक्खों के सैनिक दल बिखरे हुए थे। माझा और रियाडकी क्षेत्रों की तरफ से सभी सैनिक दल शीघ्र नहीं पहुंच सकते थे, उन क्षेत्रों को खाली करके आना भी उचित न था। दल खालसा के नायक बंद सिंह बहादुर स्वयं गंगा-दोआबा क्षेत्र (सहारनपुर के आस पास) विचरण कर रहे थे। उन दिनों वहां सिक्खों ने जलालाबाद को घेर रखा था। अत: वहां से भी कुमक आने की आशा न थी। अत: यहां के स्थानीय सिक्ख सेनापति ने एक विशेष प्रकार की योजना बनाई। उन्होने पहले स्थानीय किले राहोन पर नियन्त्रण कर लिया। वहां कुछ सैनिकों को तैनात कर के बाकी की सेना को मुख्य मार्ग की झाड़ियों में घात लगा कर बैठ जाने को कहा। एक पुराने ईंटों के भट्ठे को गढी की शक्ल देकर मोर्चाबन्दी कर ली ताकि कठिन समय में स्वयं को सुरक्षित किया जा सके। जैसे ही शम्स खान अपनी सेना लेकर बढ़ता हुआ सिक्खों की मार के नीचे आया, वैसे ही घात लगाकर बैठे सिंघों ने झाड़ियों में से शत्रुओं पर तोपों के गोले दागे और बन्दूकों से निशाने साध । इस अप्रत्यक्ष मार की जेहादियों को आशा न थी। वे घबरा कर इधर-उधर भाग कर बिखर गये। अन्त में आमने-सामने तलवारों का भयंकर युद्ध हुआ। सिक्ख तलवार चलाने में बहुत कुशल थे, उनके सामने भावुक होकर धर्मयुद्ध लड़ने आये नव सिखिये गाज़ी क्षण भर भी न टिक सके। देखते ही देखते चारों और शव ही शव दिखाई देने लगे। दिन भर घमासान युद्ध हुआ। शत्रु की कमर टूट चुकी थी, परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक थी। अत: सिक्खों ने 'राहों' के किले में अंधेरा होते ही शरण ली। यह उन के कब्जे में पहले से ही था।

दूसरे दिन शम्स खान ने अपने वैतनिक सैनिकों के बल पर किला घेर लिया उसकी गाज़ी सेना भाग चुकी थी। किले का घेराव लम्बा समय ले सकता था। सिक्ख सेना ऐसा नहीं चाहती थी, क्योकि किले में खाद्यान की कमी थी। एक रात अकस्मात् सिक्खों ने किला खाली कर दिया और दूर जंगलों में जा घुसे। इस प्रकार मुग़ल फौज़ किले पर कब्जा जमा बैठी। शम्स खान ने खालसा दल को पराजित हुआ जान कर उन का जंगलों में पीछा नहीं किया और वह अपनी राजधानी सुल्तानपुर लौट गया। उन दिनों जरनैली सड़क पर स्थित होने के कारण सुलतान पुर लोधी बहुत विकसित नगर था। सिक्खों ने सभी परिस्थितियों का अनुमान लगाया और फिर नई योजना बना कर किला राहों पर पुन: आक्रमण करके अपने अधिकार में कर लिया। इस विजय से सभी आस-पास के क्षेत्र दल खालसा के झण्ड़े के नीचे आ गये।

राहों नगर का शासक नियुक्त कर सिक्ख जालन्धर की ओर बढ़ निकले। यहां के पठान ऐसे भयभीत थे कि वे उनके पहुंचने का समाचार सुनते ही नगर छोड़ कर भाग निकले। जालन्धर पर सिक्खों का अधिकार बहुत ही सरलता पूर्वक हो गया। ठीक इसी भांति बजवाड़ा (होशियारपुर) के सरकारी अधिकारी ने भी कोई सामना न किया और अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार कुछ ही दिनों में प्राय: समस्त दोआबा क्षेत्र दल खालसा के अधीन हो गया। दोआबा का मुख्य फौजदार शम्स खान स्वयं भी सुलतानपुर में शांति से न रह सका। इतिहासकार लिखते है उन दिनों उस के साथ सिक्खों की बाइस बार अलग-अलग स्थानों पर झड़पे हुई। जिससे वह सदैव भयभीत रहने लगा। अत: वह केवल नाम मात्र का ही प्रशासक रह गया था ।

इतिहासकार मैलकम लिखता है :- "इसमें कोई संदेह नहीं रह गया था यदि बादशाह अपनी समस्त फौजे लेकर पंजाब न आता तो खालसा दल ने सारे हिंदुस्तान को घेर लेना था। उसके पंजाब आने से पासा पलट गया और मुसलमान जहादी शक्तियां फिर से एकत्र करके उसने पुन: मुकाबला किया और सफल भी हुआ "। ठीक इसी प्रकार इतिहासकार इरादत खान कहता है :- "उन दिनों दिल्ली में कोई ऐसा सरदार नही था, जिसमें दल खालसा के विरूद्ध दिल्ली से आक्रमण करने की दलेरी होती। राजधानी का बड़ा सरकारी हाकिम आसफ दौला (असद खान) डर रहा था, इसलिए शहर के वासी दिखाई दे रहे मुसीबत के बादलों से बचने के लिए अपने परिवारों तथा माल-असबाब को पूर्व के पड़ोसी प्रांतो में सुरक्षा के लिए भेज रहे थे ।"

सम्राट बहादुर शाह का दल खालसा के विरूद्ध अभियान

बादशाह बहादुरशाह को पंजाब में सिक्खों के विद्रोह करने के समाचार सन् 1709 के अंत मे प्राप्त होने लगे थे। तब वह अपने भाई कामबख्श के विरूद्ध दक्षिण में युद्ध करने गया हुआ था। लोटते समय उसे अजमेर के निकट समाचार मिला कि सिक्खों ने सरहिन्द पर विजय प्राप्त कर ली है और वहां के सूबेदार वज़ीद खान को मौत के घाट उतार दिया है और उन्होंने अपने नेता बंदा सिंह बहादुर के नेतृत्व में पंजाब के अधिकांश भाग पर नियन्त्रण कर लिया है। इन दु:खत समाचारों के मिलने पर सम्राट के क्रोध की सीमा न रही। उसने राजपूताने के अड़ियल राजा जय सिंह कुशवाहा तथा जसवन्त सिंह राठौर की मरम्मत करने का काम बीच में ही छोड़कर, वह स्वयं ही सिक्खों को समाप्त करने के लिए पंजाब की तरफ बढ़ा। उसने सभी उत्तरी भारत के फौजदारों और गवर्नरों के नाम आदेश जारी कर दिये कि वे सभी मिलकर बंदा सिंह बहादुर और उसके साथियों कि विरूद्ध सम्मिलित गठजोड़ स्थापित करें। बादशाही राजधानी के इतना निकट इस प्रकार का सामान्य जनता का विद्रोह जैसा कि सिक्खों ने कर दिया था, राजपूतों के झगड़ो से अधिक भयानक था तथा भविष्य के लिए कई समस्यायें उत्पन्न कर सकता था। अत: बादशाह ने राजपूतों को फिर कभी निपटने के लिए छोटकर सीधा पंजाब की ओर सैन्य बल का रूख किया।

इस समय बादशाह तथा वजीर मुनइस खान के मध्य मतभेद हो गया। वजीर का कहना था कि इतने बड़े प्रतापी बादशाह के लिए

सिक्खों जैसे तुच्छ विद्रोहियों के विरूद्ध स्वयं आक्रमणकारी होना उसकी शान के विरूद्ध है। परन्तु इस मतभेद के रहते भी बादशाह ने इस विद्रोह को बहुत गम्भीरता से लिया और स्वयं उसे कुचलने के विचार से सीधा ही समस्त सेना के साथ पंजाब की ओर बढ़ा चला आया।

उसने सबसे पहले हिन्दुओं और सिक्खों के बीच पहिचान के लिए अपने उन सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को चाहे वे उसके दरबार में थे या राज्य के अन्य कार्यालयों मे, आज्ञा दी कि वे सभी अपनी दाढी-मूंछें मुंडवा दे ताकि हिन्दु व सिक्ख को पहचानने में कोई कठिनाई न हो और यही आदेश उसने फिर सामान्य जनता के लिए भी लागू करने को कहा।

बादशाह को दल खालसा के नायक बंदा सिंह द्वारा नई मुद्रा जारी करने की भी सूचना दी गई और बताया गया कि उसने जमीदारी नियामावली समाप्त कर दी है और किसानों को समस्त अधिकार देकर उन्हें सीधे लगान सरकार को देने को कहा है।

सम्राट बहादुर शाह ने अपने दो सेनापतियों महावत खान व फीरोज़ खान मेवाती के नेतृत्व में लगभग 60 हजार सैनिकों का सैन्य बल सिक्खों को कुचलने के लिए भेजा। इस समय सिक्खों की शक्ति बिखरी हुई थी। अधिकांश सिंह अपने जत्थेदारों के साथ यमुना पार उत्तर प्रदेश के सहारनपुर और जलालाबाद के क्षेत्रों में सर्घषरत थे। इस मुहिम में बहुत से सिंह शहीद हो गये थे और जलालाबाद के किले के घेराव के कारण बड़ा उलझाव उत्पन्न हो गया। जो न चाहते हुए भी समय की बर्बादी का कारण बन गया। इसलिए यहां के सिक्ख सैनिक समय अनुसार लौट नहीं सके। बाकी के सैन्यबल पंजाब के माझा व दुआबा क्षेत्र के परगनों में जगह-जगह बिखरे हुए प्रशासनिक व्यवस्था करने में जुटे हुए थे। सरहिन्द में केवल प्रबन्ध योग्य सेना ही रखी हुई थी। इन सब की संख्या बड़े युद्धों में भाग लेने योग्य नही थी। दूसरी तरफ मुग़ल शासक पूरी तैयारी से हिन्दुस्तान भर में से सेना एकत्र कर लाऐ थे। अत: ऐसे समय में सिक्खों की विजय की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। फिर भी जत्थेदार विनोद सिंह तथा जत्थेदार राम सिंह को ही अपने थोड़े से सिपाहियों के साथ फिरोजखान की शाही सेना के साथ टक्कर लेनी पड़ी। तेरोड़ी (करनाल) के समीप अमीनगढ़ के मैदान में दोनों सेनाओं का बड़ा मुकाबला हुआ। महावत खान ने पहले आक्रमण किया। इस पर सिक्खों ने उसकी फौजों को मात दे दी महावत खान ने कायरता प्रदर्शित की और हानि उठाकर पीछे हट गया। फीरोज खान मेवाती पहली चोट में ही युद्ध की यह बुरी दशा देखकर बहुत चकित हो गया और वह अपने प्राणों की बाज़ी लगाने पर उतर आया। फीरोज खान ने गुस्से में पागल होकर समस्त सेना को एक साथ सिक्खों पर टूट पड़ने का आदेश दिया। सिक्ख संख्या में आटे में नमक के बराबर भी नही थें। इसलिए वे इतने बड़े आक्रमण में घिर गये फिर भी वे बहुत वीरता से लड़े और अपने जीवन की आहुति देकर कड़ा मुकाबला किया और खालसा गौरव को बरकरार रखा। परन्तु इस क्षेत्र के लोगों ने भी मुग़ल सेना का साथ दिया। जिससे सिक्ख पराजित होकर पीछे हटने लगे। जिस समय अमीन क्षेत्र में हुई विजय का समाचार बादशाह को मिला तो उसने प्रसन्न होकर 20 अक्तूबर को सरहिन्द की फौजदारी फीरोज खान को प्रदान की और विशेष खिलअतें (पुरस्कार) भेजे।

अमीनगढ़ से दल खालसा पीछे हटता हुआ थानेसर पहुंच गया। परन्तु यहां भी किसी ओर से सहायता अथवा कुमक पहुंचने की आशा नहीं थी। अत: थानेसर में एक छोटी सी झड़प के बाद सिक्ख सढोरा नगर की ओर हटते गये ताकि आवश्यकता पड़ने पर लौहगढ़ के किले में पनाह ली जा सकें। विजय का समाचार सुनकर बादशाह स्वयं युद्ध का अंतिम परिणाम देखने के लिए 3 नवम्बर 1710 ई० तरावड़ी जिसे आलमगीर पुर भी कहते हैं पहुंचा।

सरहिन्द नगर की पराजय

जब कम संख्या होने के कारण दल खालसा अमीनगढ़ की लड़ाई जीती हुई हार कर पीछे हटते हुऐ थानेसर पहुंच गये तो बायजीद खान जो कि सिक्खों के डर के मारे लम्बे समय से पानीपत में रूका हुआ था अपने जवानों को लेकर जालन्धर की ओर चल पड़ा। जैसे ही यह समाचार शम्सखान को मिला कि उस का चाचा बायजीद खान विजय का संदेश लेकर लौटा है। उसका साहस बढ़ गया। उसने दोआबा क्षेत्र के नगर जालन्धर से काफी वैतनिक सैनिक एकत्रित कर लिए और उमर खान व चाचा बायजाद खान की सेना भी अपनी सेना मे सम्मिलित करके सरहिन्द पर आक्रमण कर दिया। उस समय सरहिन्द का खालसा दल का फौजदार बाज सिंह कुमक लेकर युद्ध करने अमीनगढ़ गया हुआ था। उसके स्थान पर उसके भाईयों सुक्खा सिंह व शाम सिंह ने बहुत साहस से शत्रु का सामना याकूब खान के बाग में किया। इस मैदान में पहले-पहल सिक्खों का पलड़ा भारी रहा परन्तु अन्तिम मुठभेड़ में गोला बारूद की कमी और सैनिकों की कम संख्या के कारण सिक्खों को मैदान छोड़ किले की शरण लेनी पड़ी। वास्तव में घमासान युद्ध में सुक्खा सिंह मारा गया। जिस कारण सिक्खों के पैर उखड़ गये। जब कि युद्ध समान स्तर पर चल रहा था।

सरहिन्द के किले में रण साम्रगी का पहले से ही अभाव था। अधिकांश गोला बारूद अमीनगढ़ भेजा जा चुका था। अब अधिकांश सिक्ख सैनिक काम आ चुके थे। ऐसे में कुछ गिनती के सैनिकों के साथ लम्बे समय का युद्ध नहीं लड़ा जा सकता था। अत: सिक्खों ने समय रहते सरहिन्द का किला त्याग दिया। जो तुरन्त शत्रु सेना के हाथ आ गया ।

यहां से सिक्ख सेना पीछे हटती हुई नयी पनाहगाह की खोज में खरड़ पहुंचे। परन्तु उनका पीछा मुहम्मद अमीन खान की पलटन कर रही थी। यहां से सिक्ख सेना बुडेल गांव के किले में पहुंची। यहां पर मुग़ल सेना और सिक्ख सेना में भंयकर युद्ध हुआ। अकस्मात रोपड़ से

पीछे हटती हुई, एक सिक्ख सेना की टुकड़ी उस समय वहां पहुंच गई। बस फिर क्या था सिक्खों का पलड़ा भारी हो गया। उन्होंने तुरन्त अफवाह फैला दी कि बंदा सिंह स्वंय कुमक लेकर हमारी सहायता को आ पहुंचा है। इस पर भयंकर घमासान का युद्ध हुआ। यहां मुग़ल सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी। उनके लगभग एक हजार जवान काम आये और बाकी भाग कर लोट गये।

सढौरा तथा लोहगढ़ के किलो का पतन

दल खालसा की थानेसर में हुई पराजय से सभी सिक्ख सैनिक सिमट कर सढौरा व लोहगढ़ के किले में आ गये अथवा बिखर कर पर्वतों व जंगलों में शरण लेकर समय व्यतीत करने लगे। इस समय दल खालसा के नायक बंदा सिंह को अपनी भूल का ऐहसास हुआ कि उसने समय रहते बादशाह के लौट आने और उससे लोहा लेने का पहले से क्यों नही व्यवस्था की। वह केवल भजन-बंदगी मे व्यस्त रहा। यदि वह चाहता अथवा ध्यान देता तो नये नियमित सैनिक भर्ती किये जा सकते थे। क्योंकि उसके पास धन की तो कमी थी ही नहीं।

दल खालसा के उत्थान और थानेसर की पराजय के बीच में हुए युद्धों में लगभग पचास हज़ार सिक्ख सैनिक काम आ चुके थे, और बहुत से नकारा भी हो चुके थे। भले ही उनके स्थान पर नये मरजीवड़े (स्वंयसमर्पित) सैनिक आ गये थे। परन्तु वे अभी नव सिखिया जवान ही थे, इस प्रकार क्षति पूर्ति नहीं हो पाई थी। बंदा सिंह द्वारा बादशाह के वापस लौटने पर कोई विशेष नीति निर्धारित न करना और उदासीन रहना यह उस की सब से बड़ी भूल थी।

बादशाह का डेरा 24 नवम्बर 1710 को सढौरा पहुंचा। अब लगभग सिक्ख सेना पीछे हटती हुई, थानेसर व सरहिन्द से यहां आ चुकी थी अथवा भटक कर शिवालिक पर्वत माला की ओट में कहीं समय व्यतीत कर रही थी। तभी 25 नवम्बर को समाचार मिला कि रूस्तम दिल खान कठिनाई से लगभग दो कोस ही बादशाही डेरे से आगे गया होगा कि सिक्खों के एक दल ने उसकी पलटन पर गुरिल्ला युद्ध कर दिया। इस छापा मार युद्ध में शाही लश्कर बुरी तरह भयभीत हो गया। देखते ही देखते मुग़ल फौजियों के चारों ओर शव ही शव बिखरे हुए दिखाई देने लगे। खाफी खान जो उस समय उनके साथ था कहता है कि जो युद्ध इसके उपरान्त हुआ उसका वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है। उस समय तो ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध में मुग़ल पराजित हो रहे हैं, क्योकि सिक्ख सरदार तलवारे हाथ में लेकर आगे बढकर जहादियों के मौत के घाट उतार रहे थे। इस प्रकार रूस्तम दिल खान के सैनिक इस आक्रमण को सहन न कर तित्तर-बित्तर हो गये। परन्तु अल्लाह के फज़ल से पीछे से अतिरिक्त सेना आ पहुंची, उनकी बहुसंख्या सिक्खों पर भारी हो गई। इस प्रकार हारी हुई बाज़ी जीत में बदल गई। इस मुठभेड में फीरोजखान मेवाती का एक भतीजा मार गया तथा उसका पुत्र घायल हो गया। दूसरी ओर सिक्खों के दो सरदार तथा ढाई हजार जवान मारे गये। बाकी के सैनिक फिर से जंगलो में अलोप हो गये।

लोहगढ़ में उस समय केवल बारह तोपें थी। परन्तु इन के लिए गोला बारूद इतना कम था कि मुश्किल से तीन या चार घंटे युद्ध लड़ा जा सकता था। बारूद के बिना अस्त्र तो नकारा माने जाते है। दल खालसा का लोहगढ़ केन्द्र था। अत: यहां बारूद का निर्माण तो करवाया गया था। किन्तु अधिकांश युद्ध के मैदानों में भेजा जाता रहा था, इसलिए यहां बाकी बहुत थोड़ा सा बचा था। यही दशा अन्य वस्तुओं की भी थी। खाद्यानें व पानी की भी कमी अनुभव की गई। क्योकि बादशाही लश्कर इतनी शीघ्र पहुंच जाऐगा, यह किसी को भी आशा नहीं थी। शाहबाज़ सिंह तोप खाने का विशेषज्ञ था। उसने सभी मोर्चो पर तोपे तथा बारूद आवश्यकता पड़ने पर ठीक स्थान पर कुमक भेजी। लौहगढ़ किले के पूर्व व पश्चिम दिशा में कई ऊँचे टीलेनुमा पहाड़ी चोटियां थी। जिन्हें विजय किये बिना लोहगढ़ पर सीधा आक्रमण करना असम्भव था। अत: उन टीले पर छोटी तोपे तथा पयादा सैनिकों की टुकडियां बैठा दी गई।

जब बादशाह ने स्वंय दूरबीन से किले की मज़बूत स्थिति देखी तो उसने किले पर आक्रमण करने का आदेश नहीं दिया और कहा यदि हम जल्दबाजी में हमला करते हैं तो हमारा बहुत जानी नुक्सान बहुत हो सकता है। अत: उसने कहा रूकों और प्रतीक्षा करो कि सिक्ख किस परिस्थिती में हैं। किन्तु सिपाह-सालार मुनीम खान आक्रमण करने की जल्दी में था। उसका कथन था कि एक साथ धावा बोलने से किला फतेह हो सकता है। किन्तु बादशाह इस बात के लिए राज़ी न हुआ। उसने दूसरे वजीरों से विचार-विर्मश किया। उनका मत था इतनी बड़ी कीमत चुकाने की क्या जरूरत है। यदि हम इस किले को घेर कर रखेगे तो अन्दर की फौज भूखी-प्यासी लड़ने के लायक नहीं रहेगी। जिससे किला हमारे कब्जे मे सहज ही आ जायेगा। इस पर बादशाह ने कड़े आदेश दे दिये कि सिक्खों के मोर्चो की तरफ अभी कोई भी आगे नहीं बढ़ेगा। किले के बाहर लम्बे समय का घेराव और मुग़ल सेना की चुप्पी देखकर सिक्खों ने इस युद्ध में आई उदासीनता के अर्थ निकालने शुरू किये। वे समझने लगे हमें भूखे प्यासे मरने पर विवश किया जायेगा। अत: सिक्खों ने रणनीति बदल डाली। निर्णय यह लिया गया कि केवल उतने ही सैनिक किले में रहे जिन की युद्ध में अति आवश्यकता है बाकी की भीड़ धीरे-धीरे गुप्त मार्गे द्वारा धन सम्पदा लेकर कीरतपुर में, पर्वतीय मार्गो से होती हुई पहुंचे। ऐसा ही किया गया, क्योंकि किले में धीरे-धीरे खाद्यान की कमी अनुभव होनी प्रारम्भ हो गई थी। यही स्थिति सढौरे के किले की भी थी। वहां भी आवश्यकता से अधिक सैनिक किले के भीतर थे ओर चारों ओर से शत्रु सेना से घिरे होने के कारण अन्दर बहुत विकट परिस्थिति बनी हुई थी। अत: वहां के सिंहों ने निर्णय लेकर एक रात अकस्मात् किला त्याग कर वनों में घुस गये। सढौरे का किला तो पर्वतों की तलहटी में स्थित था। इसलिए शत्रु सेना किसी समय भी इस पर नियन्त्रण कर सकती थी क्योकि उनके पास सैनिकों का टिड्डी दल जो था।

एक दिन वजीर मुनइम खान खाना ने बादशाह से निवेदन किया कि वे उसे शत्रु पक्ष के स्थानों और मोर्चो कर सर्वेक्षण करने के लिए

सेना सहित आगे बढ़ने की आज्ञा प्रदान की जाये। बादशाह ने इस शर्त पर आज्ञा देना स्वीकार किया कि वह बादशाह के अगले आदेश के बिना धावा नहीं प्रारम्भ करेगा।

मुइनम खान जब पांच हजार जवानों की सेना लेकर सिक्खों के मोर्चो की मार में पहुंचा तो उनके अड्डों से तोपों की जोरदार आग बरसानी आरम्भ हो गई तथा पहाड़ी चोटियों से उनके प्यादों ने वाणों तथा गोलियों से बेघ दिया। उस समय मुइनम खान दुविधा में फंस गया और उसने बादशाह की नाराजगी की उपेक्षा करके अपनी सैन्य ख्याति की रक्षा के विचार से धावा बोलने का निर्णय ले ही लिया। भले ही इसमें बादशाह के हुक्म की अवज्ञा थी। यह सब बादशाही डेरे से स्पष्ट दिखाई दे रहा था। यह देखकर कि कहीं मुइनम खान बाज़ी न मार जाए, ईर्ष्या तथा सैन्य प्राप्ति के लालसा के कारण दूसरे फौजी सरदारों ने भी अपने प्यादों को धावा बोलने का आदेश दे दिया। उन्होने भी बादशाह के आदेश की प्रतीक्षा न की। इनमें शाहजदां रफी-उ-शाह तथा रूसतम दिलखान भी शामिल थे। यह सब काण्ड बादशाह तथा उसके शाहजादें अपने-2 तम्बुओं के आंगन से क्रोध से सन्तोष के मिश्रित भावों से देख रहे थे।

दल खालसा की चौकियां बहुत अच्छी स्थिती में थी। उन्होंने ठीक-ठीक निशाने लगाकर तोपों के गोले दागे जिससे शत्रु सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी। शवों के डेर लग गये परन्तु वे पीछे नहीं हट सकते थे। क्योकि मुनइम खान भारी कीमत चुका कर भी लोहगढ़ को विजय करना चाहता था। इसलिए मुग़ल सेना का टिड्डी दल आगे बढ़ता ही चला आ रहा था। उनका मानना था कि ऐसे पहाड़ी किलों को सदैव संख्या के बल पर ही जीता जाता है। इस प्रकार वे हर प्रकार की कुर्बानी देने को तैयार थे। दूसरी तरफ दल खालसा के पास गोला बारूद सीमित था। वे बहुत विचार करके एक-एक गोला दागते थें। पूरे दिन तोपें चलती रही। आखीर बारूद समाप्त हो गया। इस पर सिक्ख सैनिकों ने हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं से लोहा लेना ही ठीक समझा। वे खदंको से बाहर निकल आये और शत्रुओं पर टूट पड़े और मर गये। सूर्यास्त के समय तक मुनइम खान केवल दो चौकियों पर ही कब्जा कर पाया। उसने अपनी सेना को युद्ध बंद करके अगले दिन की रणनीति निर्धारित करने के लिए कहा और आदेश दिया जो जहां है वहीं डटा रहे ताकी अगले दिन वहीं से आगे बढा जाये।

मिर्जा रूकन ने इस समय रणक्षेत्र से लौटकर बादशाह को सूचना दी कि युद्ध अभी पहाड़ी दर्रो में चल रहा है और रूस्तम दिलखान उस पहाड़ी के आंचल तक पहुंच गया है। जिस की सफेद इमारत में सिक्खों का नेता बंदा सिंह है। तब मुनइम खान भी मोर्चो से लौट आया और उसने बादशाह को विश्वास में लिया। उसने बादशाह को बताया कि कल के हमले में हम मरदूद बंदा सिंह को अपनी कैद में ले लेंगे क्योंकि किले को हमने चारों तरफ से घेर लिया है और हमारी स्थिति मजबूत है और जान पडता है सिक्खों के पास अब गोला बारूद बिल्कुल खत्म हो गया है। इस पर बादशाह ने कहा- "यह तो खुदा का करम समझो कि उनकें पास बारूद पर्याप्त मात्रा में नहीं था, नहीं तो तेरी हिमाकत ने तो आज सभी शाही फौज़ को मरवा ही दिया था। तुमने मेरे हुक्म की कोई परवा नहीं की है, हम तुम्हें एक ही शर्त पर माफ कर सकतें है कि कल मरदूद बंदा हमारी कैद में होना चाहिए।"

मुनइम खान ने बादशाह को विश्वास में लेते हुए बताया कि मुझे पहले धावे के समय में ही ऐहसास हो गया था कि सिक्खों के पास गोला बारूद नहीं के बराबर है क्योंकि वे तोपें बहुत सोच विचार के बाद में ही दागते थे। तो जैसे ही हम उनकी मार के नीचे पहुंच गये थे, खूब गोला-बारी होनी चाहिए थी। मैंने इसी बात का अंदाजा लगाकर थोड़ा खतरा मोल लिया था, जिस में सफलता मिली है। आज दोपहर तक हमने उनकी दो बाहरी चौकियां अपने कब्जें में लेती थी। जिसमें सिर्फ तीन सौ (300) ही प्यादे थे। इन्शाह-अल्लाह कल हम अपनी संख्या के बल से किले में बहुत आसानी से घुसने में कामयाब हो जायेगें।

सूर्यास्त होने से पहले कुछ मुग़ल सिपाही सोम नदी की ओर से आगे बढ़ने में सफल हो गये। उन्होने किल की दीवार को सीड़ी भी लगा ली किन्तु अन्दर के सर्तक सिक्ख जवानों ने उन पर तलवारों से हमला कर उन के हाथ अथवा बाजू ही काट दिये। अंधकार और सर्दी बढ़ने के कारण दोनो ओर से युद्ध रूक गया। किले के अन्दर दल खालसा के नायक ने तुरन्त अपनी पंचायत का सम्मेलन किया और नई रणनीति के लिए विचार गोष्ठी की। सभी ने एक मत होकर कहा किला त्यागने में ही खालसे का भला है क्योंकि खाद्यान व बारूद युद्ध के दोनो प्रमुख साध नों का अभाव स्पष्ट है और दूसरी और शुत्र सेना टिड्डी दल के समान बढ़ती ही चली आ रही है। अत: समय रहते सुरक्षित स्थानों के लिए निकल जाना चाहिए। उस समय एक नये सज़े सिक्ख ने स्वयं को समर्पित किया और कहा- "मै जत्थेदार बंदा सिंह जी की वेष-भूषा धारण करके उनके स्थान पर बैठ जाता हूँ। जिस से शत्रु भ्रम में पड़ा रहे। बंदा सिंह ने आदेश दिया जो रण सामग्री साथ ले जायी जा सकती है। वे तो उठा लो बाकी को आग लगा दो। इस नीति के अन्तरगत सिक्खों के पास एक इमली के पेड़ के तने से बनी तोप थी जिस में उन्होंने आवश्यकता से अधिक बारुद भर कर किला त्यागने से पहले अर्द्ध रात्रि को उठा दिया। जिसका धमाका इतना भयंकर था कि कोसो तक धरती कांप उठी तभी बंदा सिंह और उसका दल खालसा हाथ में नंगी तलवार लेकर किले के द्वार को खोल कर शुत्र सेना की पंक्तियों चीरते हुये नाहन की पहाड़ियों में अलोप हो गये।

एक दिसम्बर 1710 गुरुवार को प्रात: पौ फटने से पूर्व ही सिपाह-सालार मुनइम खान ने अपने समस्त टिड्डी दल के साथ लोहगढ़ किले पर धावा बोल दिया और थोड़े ही परिश्रम से लोहगढ और उसके उपकिले सतारागढ़ पर अधिकार कर लिया। वह उस समय बहुत प्रसन्न था। उसे विश्वास था कि वह शीघ्र ही सिक्खों के नेता बंदा सिंह को जीवित अथवा मृत रूप में बादशाह के पास उपस्थित कर सकेगा। परन्तु उसकी निराशा, व्याकुलता तथा दु:ख का कौन अनुमान लगा सकता है जब मुनइम खान को पता चला कि बाज तो उड़ गया है और पीछे वह इस बात

का कोई संकेत तक भी नहीं छोड़ गये कि वह किधर गया है। इरादत खान बताता है कि कुछ देर के लिए मुनइम खान भौचक्का-सा रह गया और बादशाह के क्रोध के भय में डूब गया। कोतवाल सरवराह खान ने भाई गुलाब सिंह को (जोकि बंदे की वेष-भूषा में था) तथा दस-बारह अन्य घायल व मृतप्राय सिक्खों को पकड़ लिया। यह समाचार तुरन्त बादशाह के खेमें में पहुंच गया। बादशाह के क्रोध की सीमा न रही उसने तुरन्त ढोल व नगाड़े बजवाने बंद करवा दिये और कहा- इतने कुत्तों के घेरे से गीदड़ बच कर कैसे भाग गया ? वजीर मुनइम खान ने उसे पकड़ कर पेश करने की जिम्मेदारी ली थी। अब उसे इस वायदे को निभाकर दिखाना चाहिए। थोड़ी देर बाद जब मुनइम खान सिर नीचा करके बादशाह के खेमें के पास पहुंचा तो बादशाह ने अन्दर से ही क्रोध में कहा मैं तुमसे मिलना ही नहीं चाहता। जब सिक्खों के बचे हुए कोष की खोज में किले लोहगढ़ की धरती को खोदा गया तो वहां से पांच लाख रुपये तथा तीस हजार चार सौ स्वर्ण मुद्राएं प्राप्त हुई। जिन्हें शाही कोष में जमा कर दिया गया।

सम्राट तथा मुग़ल सेना की दयनीय दशा

बादशाह बहादुरशाह जिन दिनों अपने भाई काम बख्श के विरुद्ध दक्षिण भारत में समस्त देश की सेना एकत्र करके उसका दमन करने गया हुआ था। लगभग उन ही दिनों दिल्ली के निकट दल खालसा के नायक बंदा सिंह बहादुर ने मुग़ल प्रशासन के विरुद्ध आतंक फैलाना प्रारम्भ कर दिया था। वह कुछ ही दिनों में एक बड़ी शक्ति के रुप में उभरने लगा। उसकी क्रमवार विजय की सूचनाओं ने सम्राट की नींद हराम कर दी थी। वह लौटते समय राजपूताने के नरेशों को उनकी कुचालों का सबक सिखाना चाहता था किन्तु सामाणा, सढौरा और सरहिन्द में हुई मुग़ल सेना की पराजय ने उसको तुरन्त पंजाब आने पर विवश कर दिया। इस लम्बी अवधि में उस के साथ चल रही सेना को घरों से चले लगभग दो वर्ष होने को थे। लम्बी यात्राओं और गर्मी, वीराने जंगल, पठारी क्षेत्रों में पेयजल के अभाव व सुख सुविधाओं से वन्चित जीवन जी रहे सैनिक थके हारे घर लौटने की जल्दी में थे। परन्तु उनके भाग्य में सुख कहा ? एक मुहिम के समाप्त होते ही, दूसरी उससे भी कठीन मुहिम प्रारम्भ हो जाती थी। वेतन मिले भी कई माह व्यतीत हो चुके थे। दिल्ली से दक्षिण भारत और वहां से सढौर क्षेत्र का सफर लगभग 3000 मील था, जिस में मौसम के परिवर्तन इत्यादि के कारण कई सैनिक बिमारियों से घिर गये और कई युद्ध में मारे गये अथवा घायल अपंग होकर नकारा हो चुके थे। अत: सभी ओर सेना छुटटी की मांग कर रही थी। कुछ सैनिक तो विद्रोह पर उतारु हो चुके थे।

बंदा सिंह बहादुर का लोहगढ़ किले से सुरक्षित निकल जाना और बादशाह का क्रोधित होना के साथ ही सेना का मनोबल टूट चुका था। वे जल्दी घर लौटने की चेष्टा में थे, परन्तु बादशाह का हुकम था कि दल खालसा के नायक बंदा सिंह का पीछा करो और उसे जिन्दा या मुर्दा हाज़िर करो। सभी जानते थे घने जंगली पर्वतीय क्षेत्रों में यह कर पाना सम्भव नहीं, अत: सभी सरदार चुप्पी साद गये। इस के विपरीत लोहगढ़ से मिले धन को अपने वेतन के रुप में प्राप्ति की होड़ में उल्लझ गये। लोहगढ़ किले की खुदाई, वहां से प्राप्त धन का वेतन रुप में बंटवारा और सैनिकों की घर वापसी में बहुत दिन लग गये। तभी सम्राट को सूचना मिली कि खालसा दल कीरतपुर व उसके आस पास कोई ऐसा योग्य सरदार नहीं है जो सिक्खों के विरुद्ध नई मुहिम के लिए तैयार हो। क्योकि सभी जानते थे खालसा विशाल सेना से घिर जाने के कारण दबाव में आकर लोहगढ़ से चले आये थे। अन्यथा वे खुले मैदानों में किसी को निकट टिकने नहीं देते और वे जीवन मृत्यु का खेल खेलते। जिससे विजय उनके हाथ लग जाती है। इस लिए सिक्खों ने कहलूर पति राजा अजमेहर चन्द को परास्त कर दिया और मण्डी के नरेश से संधि कर ली।

जब बादशाह को दल खालसे के पुन: उत्थान की सूचनाएं मिली तो वह बहुत गम्भीर हो गया। क्योंकि उस की दशा उस समय दयनीय थी। उसे लगा यदि वह इस क्षेत्र को छोडकर दिल्ली जाता है तो सिक्ख पुन: लाहौर और सढोरा क्षेत्र पर नियन्त्रण कर लेगें। यदि वह लाहौर जाता है तो हो सकता है उस पर सिक्ख गुरीला युद्ध थोप दे जिसमें वे निपुण है। इस के अतिरिक्त वह सिक्खों का पीछा करने की स्थिती में नहीं था क्योंकि उसकी अधिकांश सेनाएं अपने-2 क्षेत्रों में छुट्टी लेकर लोट चुकी थी। अत: उसने यहीं रह कर समय व्यतीत करने का निर्णय लिया। जब तक उसके पास ताजा दम फौज की नई कुमक नहीं आ जाती। इस प्रकार उसे इस कार्य के लिए छ: माह लग गये।

दल खालसा के विघटन का कारण

दल खालसा का सेना नायक बंदा सिंह बाहदुर बहुत दयालु स्वभाव का व्यक्ति था। युवास्था में उसने हिरनी के शिकार के पश्चात् प्रायश्चित स्वरुप संन्यास ले लिया था। इस बार सरहिन्द की विजय के पश्चात् हुए रक्तपात ने उसे फिर से सोचने पर विवश कर दिया कि वह रक्तपात में भाग ले या न ले वह अपने मन की स्थिती किस को बता नहीं पा रहा था। वैसे भी वह विचार कर रहा था कि उस का लक्ष्य पूर्ण हुआ जो कि उसके गुरुदेव श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने दिया था। वह सरहिन्द को अपनी राजधानी बनाना चाहता था किन्तु उसकी पंचायत सरहिन्द नगर को शापित नगर मानती थी। अत: मुसलिसगढ़ (लोहगढ़) रियासत नाहन में आ गया। यह स्थल उस को बहुत भा गया क्योकि वह रमणीक क्षेत्र था। प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर मनोहर छटा वाला यह क्षेत्र उसे एकांत वास के लिए बहुत उपयुक्त प्रतीत हुआ। वह यहां साधना करने के विचार से रहने लगा और यहीं से दल खालसा को आदेश देने लगा। परन्तु उसका लक्ष्य कोई साम्राज्य बनाना नहीं था। उसके जो भी धन-सम्पदा हाथ आई सब अपने सैनिकों में बांट दी और अपने लिए कुछ भी न रखा जो भी धन लौहगढ़ में सुरक्षित था, वह दल खालसे के अगामी कार्यो के लिए दे दिया। उसने स्वयं युद्ध में भाग लेना छोड दिया, केवल चिन्तन मनन में ही व्यस्त रहने लगा। यह उसका स्वभाव बन गया था। उसे

यह भी ज्ञान था कि अगम्य शक्ति के वे तीर जो उसे गुरुदेव ने प्रसाद रुप में दिये थे, समाप्त हो चुके है। अत: अब वह विपत्तिकाल में गुप्त शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता। क्योकि उस की अगम्य गुप्त शक्तियां शत्रुओं ने प्रत्यक्ष देखी थी। इसलिए उसे वह एक जादूगर ही मानते थे और मुग़ल सेना बंदा सिंह के नाम से कांपती थी और साहस छोड़कर भाग खड़ी होती थी। दल खालसा ने मुग़लों में फैली हुई इस दैहशत का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए जहां भी शत्रुओं पर आक्रमण किये वहीं अफवाह फैला दी कि बंदा सिंह स्वयं युद्ध में सम्मिलित है, बस फिर क्या था? शत्रु सेना धैर्य छोड़ भाग खड़ी होती थी।

सरहिन्द विजय के पश्चात जहां दल खालसा के हाथ करोड़ो का खज़ाना आया वहीं उनके सैनिक लम्बी लड़ाई से उबे घर लौटने के चक्कर में थे। जिस से प्राप्त वेतन अथवा पुरस्कार परिवार वालों को दिये जा सके। अत: जल्दी ही दल खालसा की संख्या कम हो गई। जिस प्रकार सिक्ख लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जैसे एकत्र हुए थे, उसी प्रकार बिखर गये। परन्तु दल खालसा के नेताओं ने दल के समस्त सदस्यों को आदेश दिया कि वे जहां भी है वही स्वतन्त्रा प्राप्ति के लिए संघर्ष प्रारम्भ कर दें। इस प्रकार सिक्खों ने एक ही समय चार विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्रता संग्राम चलाने आरम्भ कर दिये। पहला संग्राम था यमुना-गंगा के मध्य का क्षेत्र सहारनपुर इत्यादि, दूसरा मालवा जिसमें सरहिन्द भी था, तीसरा सतलुज नदी और दो पानियों के मध्य का क्षेत्र जालन्धर, होशियारपुर इत्यादि और चौथा था लाहौर-अमृतसर गुरदासपुर इत्यादि नगरों का क्षेत्र (माझा)। सिक्खों को विजयी होने के कारण आत्मविश्वास जागृत हो गया था। इस के विपरीत मुग़लों का मनोबल टूट गया था कि वे परास्त नहीं किये जा सकते। इस मानसिक परिस्थिति के कारण सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो गया था। छ: माह के भीतर ही सिक्खों ने एकत्र होकर स्थानीय प्रशासन को खदेड़ कर सत्ता अपने हाथ में ले ली थी। परन्तु विशाल क्षेत्रों में फैले हुए सिक्खों को एक केन्द्रीय शक्ति बनाने में अभी कुछ और समय की आवश्यकता थी। इस से पहले कि वह अपनी संख्या बढ़ा पाते, बादशाह बहादुरशाह ने दल खालसा के विरुद्ध अभियान चलाने का मन बनाकर उन पर बहुत बड़ा आक्रमण कर दिया। रणभूमि बनी करनाल के निकट तरोड़ी के जंगली क्षेत्र व अमीनगढ़ के मैदान। यहां स्थानीय सिक्ख पलटनों के जरनैल सरदार विनोद सिंह व शाम सिंह ने बहुत बड़ी युक्ति में विशाल मुग़ल सेना को अपनी कम संख्या के रहते जरनैली सड़क पर शत्रुओं पर जंगलो से घात लगा कर आक्रमण कर दिया। जिस का परिणाम पहले-पहल तो बहुत अच्छा रहा किन्तु संख्या की दृष्टि से दल खालसा यहां आटे में नमक के बराबर थे। अत: धीरे-2 सिक्ख पीछे हटने लगे। ठीक इसी प्रकार वे बाकी अपने विजयी क्षेत्रों को भी खाली करते पीछे हटते गये क्योंकि कहीं से भी नई कुमक के आने की आशा न थी। इस उथल-पुथल में बहुत से सिक्ख योद्धा काम आये अथवा बिखर गये, जो भटक कर घरों को लौट गये। लगभग यही स्थिति सढौरा व लोहगढ़ किले के आस-पास हुई। बहुत बड़ी संख्या में सिक्ख सैनिक अपने दल से भटक कर बिखर गये और पर्वतों अथवा दूर-दराज की घाटियों में समय व्यतीत करने लगे। कुछ दिनों पश्चात् जब उन्हें बंदा सिंह द्वारा लिखित 'हुक्म नामे' कीरतपुर से प्राप्त हुए तो वे तुरन्त वहां एकत्रित होने प्रारम्भ हो गये। इनमें वह सभी दल अथवा पलटने थी जो विभिन्न क्षेत्रों में तैनात थी जो मुग़लो से बड़े संग्राम के समय पहुंच नही पाई थी। जैसे ही मुग़ल सम्राट को सिक्खों के विशाल एकत्रित सेना के समाचार पहुंच वह भयभीत हो गया। क्योकि अब उस के पास वह विशाल सैन्य बल नहीं था।

बंदा सिंह पर्वतीय क्षेत्रों में

खालसा दल के नायक बंदा सिंह तथा उसके सैनिकों का किले लोहगढ़ से सुरक्षित निकल जाना, सिक्खों की पराजय नहीं कहा जा सकता। यह ठीक है कि दल खालसा को लोहगढ़ तथा सतरागढ़ किले खाली करने पड़े और वे बादशाही सेना के हाथ आ गये। परन्तु बादशाह की आज्ञा यह थी कि सिक्ख नेता बंदा सिंह को पकड़ कर हाज़िर किया जाये। इस कार्य हेतु बादशाह लोहे का एक पिंजरा भी बनवा कर साथ लाया था। वजीर मुनइम खान खाने-खाना ने बादशाह को विश्वास ही नहीं दिलवाया था, बल्कि पूर्ण उत्तरदायित्व लिया था कि वह सिक्ख नेता को पकड़ कर ही उपस्थित होगा। इस युद्ध में बादशाह के सब से बड़े अमीर तथा सरदार सम्मिलित हुए थे तथा उन्हें हर प्रकार की सहायता भी दी गई थी। युद्ध सामग्री का भी कोई अभाव न था। पर्याप्त संख्या में बलोच तथा रोहेले पठान लुटेरे एवं वेतन भोगी सैनिक भी इक्ट्ठे किये थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि स्वयं बादशाह भी इस आक्रमण के समय मौजूद था। इतना होते हुए भी बंदा सिंह तथा उसके प्रमुख साथी तलवारें हाथ में ले साठ हज़ार मुग़ल सेना की पंक्तियां चीरते हुए बचकर निकल गये। बादशाह, शाहजादे, वजीर, बख्शी-उल-मुल्क, हिन्दू राजपूत, बुन्देले राजा, एवं जाट हाथ मलते ही रह गये, परन्तु किसी की एक न चल सकी। आक्रमण के लक्ष्य में असफल हुआ बादशाही, वजीर निराश गर्दन नीची किये रणभूमि से लौटा। बादशाह ने बाजे बंद करवा दिये तथा बख्सी-उल-मुल्क महावत खान को मिलने से इन्कार कर के उनको अपने-अपने डेरे में जाने का आदेश दिया। बादशाह के क्रोधित होने और अपमान जनक शब्द कहने से बड़ा वजीर दुखित हो शाही दरबार से उठकर चला गया। यह सब कुछ इस बात का प्रमाण है कि बादशाही लश्कर वास्तव में अपने आक्रमण में असफल रहा था।

इसमें कदाचित संदेह नही कि बंदा सिंह को किले खाली करने पड़े परन्तु उसे ऐहसास था कि अल्प संख्या तथा युद्ध सामग्री की कमी के कारण किले में टिके रह कर शाही सेना को भगाया नहीं जा सकता। अपने आरम्भ किये गये इस कार्य को पूर्ण करने के लिए उनका यहां से बच निकलना आवश्यक था और वे इस लक्ष्य में सफल हुए।

सिक्खों ने पानीपत से लेकर लाहौर के निकट तक पंजाब के आठ जिलों अमृतसर, गुरदासपुर, जालन्धर, होशियारपुर, लुधियाना, पटियाला, अम्बाला तथा करनाल एवं इसके आस-पास का क्षेत्र विजय कर लिया। शायद ही कहीं बीच में कोई छोटे-छोटे टुकड़े अविजयी रहे होगें। परन्तु इस समूचे क्षेत्र पर सिक्खों का अधिकार अभी स्थापित न हुआ था। एक तो बंदा सिंह के पास अधिक नियमित सेना न थी। दूसरा

नये आक्रमणों के लिए हर स्थान पर स्थानीय दल ही कार्य करते थे। थोड़ी बहुत जो सेना थी, वह विजयी क्षेत्रों में बिखरी हुई थी। युद्ध सामग्री भी बहुत कम थी। सामाणा नगर पर अधिकार करने से लोहगढ़ किले पर अधिकार करने तक जो कुछ भी बना-बनाया था, वह एक वर्ष के भीतर ही बना था। इन परिस्थितियों में बन्दा सिंह और उनके साथियों के लिए साठ हजार नियमित मुग़ल सेना तथा असंख्य गाजियों का, खाद्य सामग्री के भरे पूरे भण्डारों और गोला-बारुद के बिना लम्बी अवधि तक सामना कर सकना अत्यधिक कठिन था। परन्तु फिर भी बंदा सिंह एंव उनके मुट्ठी भर साथी इतनी बड़ी मुग़ल बादशाही शक्ति के रहते हुए उन्हें तुच्छ साबुत करने में सफल हो गये।

बंदा सिंह ने अपने किले एवं खज़ाना के छिन जाने से निराश होकर साहस नहीं छोड़ा। उन्हें पता था कि उनकी शक्ति तथा सफलता के मुख्य साधन ये नहीं थे। ये तो उनकी विजयों सफलताओं के कारण स्वयमेव उनके हाथ आये थे। वास्तव में उनकी विजय खालसा का अजय साहस थी, जिस पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। लोहगढ़ के किले में से निकलने के बारहवें दिन ही बंदा सिंह ने खालसा जगत के नाम पत्र प्रसारित किये 'जिन्हें लोगों ने हुक्मनामें' का नाम दिया। जिसमें लिखा था कि आदेश देखते ही खालसा उनके पास पहुंच जाये। तिथि - 12 पौष सम्वत् 1767 (10 दिसम्बर सन् 1710)।

लोहगढ़ में हुई हानि से खालसा भी निराश न हुआ था। हुक्मनामे प्राप्त होने की देरी थी कि जिन्हें पता चला वे सभी चारों ओर से कीरतपुर एकत्रित होने लगे। उन्हें देखकर बंदा सिंह का फिर से साहस बढ़ गया और शीघ्र ही उन्हें लगा कि वे शिवालिक पर्वत के देसी राजाओं के विरुद्ध आक्रमण कर सकते में समर्थ हो गये है।

बंदा सिंह की दृष्टि सर्वप्रथम राजा भीम चन्द्र के पुत्र अजमेहर चन्द कहलूरी पर पड़ी। इस का बड़ा कारण यह भी था कि वह आरम्भ से ही श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के साथ शत्रुता करता रहा था। परन्तु उसे कभी सफलता नहीं मिली थी। इसलिए उसने सरहिन्द व लाहौर के मुग़ल शासकों से गठजोड़ कर लिया था। परन्तु बंदा सिंह किसी पर अचानक आक्रमण नहीं करता था। अपनी परम्परानुसार बंदा सिंह ने परवान देकर उसके पास विशेष दूत भेजा कि वह अधीनता स्वीकार कर लें। नरेश अजमेहर का अपराधी मन पहले से ही धड़क रहा था। सरहिन्द पर दल खालसे की विजय ने उसे भयभीत कर दिया था कि वह उनके आक्रमण से नहीं बच सकता। अत: उसने जालन्धर दोआबा के प्रमुख मुसलमान जमींदारों तथा पड़ोसी पर्वतीय नरेशों की अपनी सहायातार्थ बुला लिया। उसने बिलासपुर की किले बन्दी दृढ कर ली तथा सिक्खों के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा। इस प्रकार उसने बंदा सिंह की ललकार (चुनौती) को स्वीकार कर लिया और संधि करके अधीनता स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया। परन्तु जब सिक्ख उसके क्षेत्र में विजयी होते हुए घुस गये तो उसके सभी प्रयासों के उपरान्त भी कोई उनके सामने टिक न सका। इस मुठभेड़ में तेरह सौ राजपूत मारे गये और कठिनाई से ही कोई विशिष्ट व्यक्ति बच कर निकल सका होगा। बिलासपुर नगर से दल खालसे को पर्याप्त धन उपलब्ध हुआ। नरेश अजमेर चन्द कहलूरी तथा उसके सहायको की पराजय ने बहुत से अन्य पर्वतीय नरेशों को व्याकुल कर दिया। वे सिक्खों के आक्रमण की कल्पना से ही कांपने लगे। उनके लिए बचाव का सरल मार्ग यही था कि वे चुपचाप बंदा सिंह की अधीनता स्वीकार कर लें। अत: उनमें से बहुत से दल खालसा के डेरे में आ उपस्थित हुए तथा नजराने भेंट कर, बंदा सिंह के सेवक बन गये।

ऐसा करने वालों में सबसे पहला नरेश था, मण्डी क्षेत्र का नरेश सिद्धसेन, उसने प्रार्थना की कि हम तो पहले ही गुरु नानक पंथी है और गुरु गोबिन्द सिंह जी ने मण्डी क्षेत्र को अपने चरण स्पर्श से पावन किया और राज परिवार को आर्शीवाद दे कर कृतार्थ किया था। बंदा सिंह नरेश सिद्धसेन की अधीनता देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। दोनो पक्षों ने एक दूसरे में विश्वास प्रकट किया और मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर किये।

इन दिनों सम्राट बहादुर शाह ने सभी हिमाचल प्रदेश के प्रर्वतीय नरेशों को आदेश भेज दिये कि यदि बंदा सिंह उन के क्षेत्र में हो तो उसे किसी भी विधि से पकड़ कर मेरे समक्ष प्रस्तुत कर पुरस्कार प्राप्त करे। बंदा सिंह प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होने वाला एक भावुक व्यक्ति था। वह पर्वतीय दृश्यों की मनोहर छटा से प्रभावित होकर अकेले ही घुमता हुआ कुल्लू के क्षेत्र में प्रवेश कर गया। वहां के स्थानीय नरेश ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए उसे बन्दी बना कर एक विशेष कारावास में कैद कर लिया। किन्तु बंदा सिंह के अंगरक्षों को जैसे ही इस बात की सूचना मिली। वे तुरन्त राजा मान सिंह के कारावास को तोड़कर अपने नेता बंदा सिंह को स्वतन्त्र कर वापस लाने में सफल हो गये।

एक दिन बंदा सिंह ने चम्बा क्षेत्र को देखने का मन बनाया, उन्हें ज्ञात हुआ था कि प्रकृति ने इस स्थल को अपनी अनुपम छटा से दिव्यमान किया है। किन्तु इस बार वह अपने साथ अंगरक्षों का दल ले गये। सूचना प्राप्त होते ही स्थानीय नरेश उदय सिंह ने अपनी सीमा पर अपने संतरियों द्वारा पूछ-ताछ की कि आप का चम्बा क्षेत्र में प्रवेश करने का क्या उद्देश्य है? इस पर बंदा सिंह ने कहलवा भेजा वह केवल पर्यटन के विचार से वहां आया है। तब राजा उदय सिंह ने अपने मन्त्री को भेजकर दल खालसे के नायक बंदा सिंह का भव्य स्वागत किया और उन्हें राज महल में पधारने को कहा- इस प्रकार विचारों के अदान-प्रदान से बहुत जल्दी राजा उदय सिंह और बंदा सिंह की घनिष्ट मैत्री बन गई। राजा उदय सिंह बंदा सिंह बहादुर से बहुत प्रभावित हुआ उसने राजकीय परिवार की एक कन्या का रिशता बंदा सिंह से करने का आग्रह किया। जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया और वह विवाह बन्धन में बन्ध गये। बंदा सिंह का विवाह बन्धन में पड़ने का अपना ही उद्देश्य था। वह चाहते थे कि कोई स्थाई सुरक्षित क्षेत्र उन की पनाहगाह हो। जहां वह अभय होकर विचरण कर सके। कुछ माह चम्बा क्षेत्र में व्यतीत करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए बंदा सिंह ने फिर से दल खालसा को संघठित करने का निर्णय लेकर पठानकोट-गुरदासपुर क्षेत्र में पसरना शुरु कर दिया। इस बीच उनकी नवनवेली पत्नी गर्भवती हो चुकी थी।

बंदा सिंह जी के पैतृक संस्कार इस क्षेत्र के पडोस में बसने वाले नगर राजौरी के थे। आप अपने को राजपूत व डोगरा कहलाते थे और

आप की मात्र भाषा डोगरी (पर्वतीय पंजाबी) थी। इस लिए यह विवाह बहुत सफल सिद्ध हुआ क्योकि राजकुमारी रतन कौर का भी लगभग इन्हीं संस्कारों में पालन पोषण हुआ था।

चम्बा के स्थानीय निवासी बंदा सिंह जी को एक महापुरुष अथवा गुरु रूप जानकर आदर देने लगे, बंदा सिंह जी भी अपनी गिनती बढ़ाने के विचार से श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा दर्शाय मार्ग पर प्रचार कार्य के नये सिंह सजाने लगे। परन्तु यहां के नये सजे सिंह बंदा सिंह जी को गुरु रूप जान कर आदर देते अर्थात् पांव र्स्पश करते तथा बंदा सिंह जी के जत्थे द्वारा अमृत पान करने के कारण मांस आहार नहीं करते थे। और जब कभी आपस में मिलते 'वाहि गुरु जी का खालसा ! वाहि गुरु जी की फतेह' कहने के स्थान पर संक्षिप्त रूप में 'गुरु फतेह' या 'फतेह दर्शन' कह देते। वास्तव में नये सजे सिंह अभी खालसा रहित मर्यादा सीख रहे थे। बहुत सी नई बातें उन्हें सीखने में अभी समय लगना था अथवा पूरी परिपिक्वता आनी थी। तभी सबसे बड़ी भिन्नता तब उत्पन्न हो गई जब सेना में दो प्रकार के लंगर अलग-अलग प्रचलन में आ गये। एक वह लोग थे जो मांसाहार करते थे और दूसरे वे जो मांसाहार नही करते थे। जो मांस सेवन नहीं करते थे वे बंदेई सिक्ख कहलाने लगे। जब कि इन में आपसी सैद्धांतिक मतभेद कुछ भी न था।

वैसे बंदा सिंह स्वयं भी बहुत ही उज्ज्वल जीवन वाला, नामवाणी का अभ्यामी और सयंमी पुरुष था। इस लिए उस के मुखमण्डल पर तेज-प्रताप की झलक मिलती थी और उस के वचनों में भी सिद्धि थी। वह सहज ही कुछ कह देता तो वह सत्य हो जाता। कई बार उसके अंगरक्षक यह बात प्रत्यक्ष देख चुके थे। ऐसें में उसकी मान्यता होनी स्वभाविक ही थी। श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी से दीक्षा लेने से पूर्व वह एक आश्रम चलाता था और उस के उन दिनों बहुत से शिष्य भी थे। अत: वह गुरु शिष्य परम्परा को अच्छी तरह जानता था। श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के दिव्य ज्योति में विलीन होने के समय उनके अंतिम आदेशों को नंदेड़ नगर से लौटने वाले सिंघों ने उसे अवगत करवा दिया था कि आगामी समय में शरीर रूप में कोई भी व्यक्ति विशेष गुरु नही कहला सकता। केवल समस्त सिक्खों का गुरु 'आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिब' ही होगें। जो कि केवल शब्द रूप में सर्वदा विद्यमान है। बंदा सिंह अपने गुरु जी पर पूर्ण विश्वास और श्रद्धा भक्ति रखता था। अत: वह अपने गुरु के अंतिम आदेश का सख्ती से पालन करता था।

चम्बा क्षेत्र से बंदा सिंह बहादुर पठानकोट व गुरदासपुर क्षेत्र में

सम्राट बहादुरशाह बंदा सिंह के हाथ न आने के कारण बहुत परेशान था कि तभी उसे पर्वतीय क्षेत्रों से सुचनाएं मिलने लगी कि बंदा सिंह ने दल खालसा का पुनर्गठन कर बिलासपुर के नरेश अजमेर चन्द को पराजित कर दिया है और वह इस समय फिर से शक्तिशाली बन गया है। अत: सम्राट बंदा सिंह का दमन करना चाहता था। परन्तु कोई भी उसका सरदार इस जोखिम भरे कार्य को कर सकने के लिए स्वयमेव तैयार न हुआ। सभी जानते थे कि पर्वतीय क्षेत्रों व बीहड़-जंगली स्थानों में यह कार्य असम्भव है। इसलिए वे सभी, बंदा सिंह के मैदानों में उतरने की प्रतीक्षा करने लगे।

बंदा सिंह विवाह के झमेलों में निपट कर जल्दी ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मैदानों मे पूरी शक्ति लेकर उत्तर आया। उन दिनों जम्मू क्षेत्र का फौजदार वायजीद खान खोशगी था। जिसे कुतुद्दीन का खिताब मिला हुआ था। इसने तुरन्त डेड हजार घोड़सवार सिपाही देकर अपने बहनोइ शाहदाद खान को सिक्खों का सामना करने के लिए भेजा और उसके बाद स्वयं भी सुलतानपुर के फौजदार शम्सखान के साथ नौ सौ घोड़सवार लेकर उधर ही चल पड़ा। ये लोग आधे सफर के पश्चात् शिकार खेलने में व्यस्त हो गये। तभी इन्हें समाचार मिला कि सिक्ख बहुत ही निकट आ गए है। शम्सखान उनको रोकने के लिए आगे बड़ा परन्तु सिक्खों ने 'राहों के किले' वाली युक्ति से उसे अपनी चाल में फंसा लिया। वे पहले पहल मुग़ल सेना को देखकर भाग खड़े हुए। वायजीद खान के मना करने पर भी शम्सखान ने सिक्खों का पीछा किया और वह उनके नजदीक जा पहुंचा। जैसे ही सिक्खों ने अनुभव किया कि शत्रु अब हमारे चुंगल में है तो वे तुरन्त लोट पड़े और शत्रु पर टूट पड़े। उस समय शत्रु अपनी मुख्य धारा से भटक कर अकेला पड़ गया और मारा गया। बस फिर क्या था सिक्खों की संख्या कम होने पर भी वे शत्रु पर भारी हो गये घमासान का युद्ध हुआ किन्तु मुग़लों के पैर उखड़ चुके थे। देखते ही देखते शवों और घायलों के ढ़ेर लग गये। जब वायजीद खान ने देखा युद्ध का पासा उनके विरूद्ध पलट गया है तो वे अपने बचे हुए सैनिकों को लेकर एक बार फिर सिक्खों पर टूट पडा परन्तु वह इस धावे में स्वयं बुरी तरह घायल हो गया। उसकी यह दशा देखकर उसके जवान उसे वापस लेकर भाग खड़े हुए। मैदान सिक्खों के हाथ लगा। इस विजय के होने पर दल खालसा को बहुत सी रण सामग्री हाथ लगी। इसके विपरीत घायल वायजीद खान तीसरे दिन मर गया। इस प्रकार वहरामपुर तथा रायपुर (राजपुर) से भी सिक्खों को बहुत सा धन प्राप्त हुआ। यहां से विजयी होकर ये कलानौर व बटाला के परगनों की ओर चल पड़े। यह ऐतिहासिक युद्ध 6 मार्च सन् 1711 को हुआ था।

ये वे दिन थे जब दल खालसे द्वारा स्थापित सिक्ख राज्य समाप्त हो चुका था। वे सभी मैदान छोड़ कर पर्वतों की शरण में जा चुके थे। इस समय ये विजय प्राप्त होना सिक्खों का पुनर उत्थान ही कहलाता था। जब बहरामपुर की विजय के पश्चात् दल खालसा का नायक बंदा सिंघ बहादुर कलानौर पहुंचा तो वहां के स्थानीय प्रशासन ने बंदा सिंह से युद्ध में उलझना ठीक नही समझा उसने समझोते का मार्ग चुना। वह नजराना लेकर बंदा सिंह का स्वागत करने पहुंचा। इस प्रकार उसने युद्ध की विभीषिका से नगर को बचा लिया।

बंदा सिंह ने पिछली भूलों को सुधारने के हेतु नई नीतियों के अंतर्गत सर्वप्रथम अपने सैन्य बल को बढ़ाने के लिए अन्य धर्मावलम्बिलयों

को भी अपनी सेना में भर्ती करना प्रारम्भ कर दिया। बंदा सिंह व खालसा दल का मुसलमान समुदाय से कोई मतभेद तो था ही नहीं। वह तो केवल दुष्ट और भ्रष्ट सत्ताधारियों से लोहा ले रहे थे, जो उन की अधीनता स्वीकार कर लेता था। वहां किसी प्रकार का रक्तपात होता ही नही था। अत: बंदा सिंह ने मुसलमान प्रजा से बहुत उदारतापूर्ण व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे बंदा सिंह के सैन्य बल में लगभग पांच हजार इस्लाम धर्मावलम्बी भर्ती हो गये। उनको उनके दैनिक जीवन में नमाज़ व खुतबा, अजान इत्यादि की खुल्ली छुट्टी मिली हुई थी। वे जैसे चाहें पढें।

मई 1711 ई० को बादशाह को समाचार दिया गया कि बंदा सिंह ने व्यास व रावी नदी का मध्य क्षेत्र पर पुन: नियन्त्रण कर लिया है और शाही सेना से लोहा लेने के लिए बड़े पैमाने पर सिपाही भर्ती कर रहा है। इन दिनों शाही लश्कर लाहौर के लिए चल पड़ा था और बादशाह होशियारपुर के निकट पहुंच गया था। बादशाह सर्तक हुआ उसे पहले से ही शंका थी कि पहाड़ी क्षेत्रों से यात्रा करते समय किसी भी समय सिक्ख गुरीला युद्ध उस पर थोप सकते है। वह सढोरा क्षेत्र में सिक्खों के छापे अपनी आंखों से देख चुका था। अत: उसने तुरन्त लाहौर जाने का मार्ग बदलने का आदेश दिया और अपनी सुरक्षा कड़ी करवा दी।

बटाला नगर के निकट बंदा सिंह जब अपनी सेना लेकर पहुंचा तो वहां की स्थानीय जनता का धैर्य टूट गया। वे अपनी सुरक्षा चाहते थे, जो कि उन्हें स्थानीय प्रशासन द्वारा मिलने की आशा नहीं थी। अधिकांश धनाढय लोग अपने परिवार और धन लेकर लाहौर भाग गये। यहां के फौजादार सैय्यद मुहम्मद फ़जलुद्दीन कादरी ने नगर के बाहर बंदा सिंह के सैन्य बल से कड़ा मुकाबला किया परन्तु वह जल्दी ही रणक्षेत्र में मारा गया और उनकी पराजय हो गई। नगर के दरवाजे तोड़कर और यहां की सैनिक सामग्री पर अधिकार स्थापित कर लिया। परन्तु यहां पर रूकना उसे रणनीति के अतंर्गत उचित नहीं मालुम हुआ क्योकि बादशाह विशाल लश्कर लेकर लाहौर की ओर बढ़ रहा था। बंदा सिंह कोई ख़तरा मोल लेना नहीं चाहता था। अत: वह अपनी समस्त सेना के साथ रावी नदी पार कर के जम्मू क्षेत्र की ओर बढ़ गया। यह घटना मई माह सन् 1711 के अंतिम दिनों की है। दल खालसा ने अपने लिए सुरक्षित स्थान बनाने के लिए जम्मू क्षेत्र में पहुंचते ही औरंगाबाद और पसरूर नगरों को विजय कर लिया और इन का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया।

उधर बादशाह ने खान बहादुर मुहम्मद अमीन को विशाल सेना देकर सिक्खों को कुचलने के लिए भेजा। बंदा सिंह सर्तक था, उसने अपने दल को दो भागों में विभाजित कर लिया। जून के पहले सप्ताह में उन्होंने पसरूर क्षेत्र में शाही लश्कर पर धावा बोल दिया। भयंकर मुठभेड़ हुई, दोनो पक्षों के बहुत बड़ी संख्या में सैनिक लड़े। किन्तु सिक्खों की गिनती बहुत कम थी। अत: उन्हें पीछे हटना पड़ा। परन्तु इस छापा मार युद्ध में खान बहादुर मुहम्मद अमीन बुरी तरह घायल हो गया। बंदा सिंह ने समय की नज़ाकत को ध्यान में रखते हुए पर्वतों की ओट ले ली और दूर निकल गये।

जब दल खालसा अपने जत्थेदार बंदा सिंह के नेतृत्व में जम्मू क्षेत्र पूर्व-दक्षिण की पर्वत माला में पहुंचा तो यहां के जमवाली नरेश ध्रुवदेव ने तुरन्त इस बात की सूचना लाहौर के सूबेदार को भेजी तथा राजौरी क्षेत्र के फौजदार सैय्यद अज़मतुल्ला खान को सहायता के लिए बुला कर पर्वतीय दर्रो का मार्ग आवागमन के लिए रोक दिया। उधर खान बहादुर मुहम्मद अमीन (रूस्तमे जंग) अपनी बची-खुची सेना को लेकर सिक्खों का पीछा करता हुआ पहुंचा। बंदा सिंह ने इस कठिन परिस्थिति को समझा और तुरन्त एक युक्ति अपनाई। उस समय तीनों ओर शत्रु सेना थी एक तरफ ऊँचे पर्वत, दल खालसा घिर चुका था, परन्तु उन्होनें बहुत धैर्य से काम लिया। एक पंक्ति बनाकर पीछे हटते हुए दर्रे की ओर बढ़ने लगे। जैसे ही दर्रे के निकट पहुंचे तो शत्रु सेना पर टूट पड़े और उन की पक्तियों को चीरते हुए दर्रे से निकलने में सफल हो गये। मुहम्मद अमीन हाथ मलता ही रह गया। इसने बादशाह को सूचना भेजी थी कि अब जल्दी ही बंदा सिंह को हम पकड़ने में सफल होने वाले है।

बादशाह की लाहौर में मृत्यु

किला लोहगढ़ फतेह करने के पश्चात् शाही लश्कर को पुरस्कार, वेतन और छुट्टी इत्यादि वितरण के काम में बहुत लम्बा समय नहीं ठहरना पड़ा। दूर-दराज से आई सभी फौजे जब वापस चली गई तो बादशाह को अपनी सुरक्षा की चिन्ता सताने लगी। उसे डर रहता था कि उस पर सिक्ख गुरीला युद्ध का सहारा लेकर छाप न मार दें? क्योंकि उसे कीरतपुर इत्यादि पर्वतीय क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में सिक्खों के इकट्टे होने की सूचनाये मिल रही थी। जल्दी ही उसे शम्सखान व वाजिदखान के सिक्खों द्वारा मारे जाने की भी सूचना मिल गई। अत: वह बहुत धीमी गति से लाहौर प्रस्थान कर गया किन्तु उसे रास्तें में सूचना मिली कि सिक्ख फिर से पठानकोट, बटाला इत्यादि क्षेत्रों पर नियन्त्रण कर बैठे हैं। इस पर उसने सिक्खों के दमन के लिए खान बहादुर मुहम्मद अमीन (रूस्तमे जंग) को विशाल सेना देकर जम्मू क्षेत्र में भेजा। डर के मारे उसने होशियारपुर से लाहौर जाने का अपना रास्ता बदल लिया जिस कारण वह 1 अगस्त 1711 ई० को लाहौर पहुंचा। इस बार बादशाह ने अपना डेरा शाही किले में नही डाला बल्कि रावी नदी के तट के निकट आलुवाला गांव में रखा। शाहजादा अज़ीजुद्दीन अजीमुश्शान गांव के पास ठहरा और डेरे के इर्द-गिंद खजाने की बैल गाड़ियों से परिसीमा बना ली।

बादशाह के लाहौर की ओर आने के समाचारों को सुनकर ही लाहौर के कट्टर मुसलमानों का उत्साह बढ़ गया और लाहौर के सिक्खों के लिए बहुत विपत्ति के दिन व्यतीत हो रहे थे। वास्तव में जेहादियों से भीलोवाल में बुरी तरह मार खा कर निराश होकर वापस लौट आने के कारण सिक्खों पर क्रोध था। इन्हीं दिनों सिक्खों के कत्लेआम का शाही फरमान भी यहां पहुंच गया। जो लोग रणभूमि में सिक्खों का सामना नहीं कर पाये थे, वे अब मौलाओं द्वारा अपने कट्टर मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को भड़काने के कारण, सिक्खों के घर व दुकाने लूटने लगे।

उन दिनों हिन्दू अथवा सिक्ख में कोई विशेष पहिचान न थी सभी लोग दाढ़ियों रखते थे। अतः सिक्खों की भूल में हिन्दुओं पर भी अत्याचार होने लगे। एक महिला संन्यासी की हत्या कर दी गई और एक सरकारी अधिकारी शिव सिंह जो कि मन्दिर में पूजा-अर्चना के लिए परिवार सहित गया था। कट्टर मौलविओं ने यह कह दिया कि नगर में कुफर बढ़ता ही जा रहा है, इस्लाम के लिए यह ख़तरा है। जनता को आपस में लड़वा दिया। इस मार पीट में हिन्दुओं को बहुत क्षति उठानी पड़ी। यह देखकर बादशाह की सुरक्षा के लिए तैनात बुन्देल खण्ड के हिन्दू फौजी अधिकारी बचन सिंह कछवाहा और बदन सिंह बुन्देला निर्दोष हिन्दू जनता के पक्ष में आ खड़े हुए। इस प्रकार बादशाह के खेमें में फौजी बगावत शुरू हो गई। इस समय स्थानीय प्रशासक असलम खान ने गम्भीर परिस्थितियों को भांप लिया और विवेक बुद्धि से काम लेते हुए अपराधियों को दण्ड देकर मामला शांत किया।

हिन्दुओं की बगावत का मामला निपटा ही था कि ताजियां के प्रदर्शन के कारण मुसलमानों के दो सम्प्रदायों शिया व सुन्नी में सख्त लड़ाई हो गई। बहादुरशाह स्वयं शिया था। इसलिए उसने सुन्नी मुसलमानों को उनकी नज़ायज हरकतों के लिए कठोर दण्ड दिये। इसलिए स्थानीय कट्टर मौलवी बादशाह के विरूद्ध हो गये और नगर में तनाव बढ़ गया। तभी बादशाह को समाचार मिला कि मुहम्मद अमीद खान जो कि दल खालसा के नायक बंदा सिंह का पीछा करने जम्मू क्षेत्र में गया हुआ था बहुत बड़े लश्कर का जानी नुकसान करवा कर खाली हाथ लौट आया है। इन दिनों बादशाह को पहले से ही चिंता के कारण कुछ हज़म नहीं हो रहा था। शायद उसकी तिल्ली में सूजन आ गई थी। ऊपर से इस समाचार ने उस का स्वास्थय और अधिक बिगाड़ दिया। बादशाह इसी चिन्ता में अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठा। वह बैचनी में वहमी-भ्रमी हो गया और बेसिर पैर की बाते करने लगा। इसी उत्तेजना में उसने आदेश दिया कि नगर के सभी आवारा कुत्तों को मार दिया जाये, फिर आदेश दिया कि सभी गधों को मार दिया जाये इत्यादि। तीन दिन तक वैद्यो-हकीमों ने अपनी ओर से बहुत प्रयत्न किये, परन्तु बादशाह का स्वास्थ्य ओर बिगड़ गया। इस प्रकार 18 फरवरी 1712 की रात्री में उसका देहांत हो गया।

बादशाह की मृत्यु के पश्चात् बाप-दादा की परम्परानुसार गद्दी के लिए आपा-धापी मच गई। भाईयों में गद्दी प्राप्ति के लिए युद्ध हुआ। जिसमें शाहजादा जहांदर शाह ने अपने भाईयों का वध कर दिया और 19 मार्च को गद्दी पर बैठ गया।

दल खालसा का लोहगढ़ व सढौरा किलों पर पुनः नियन्त्रण

जम्मू क्षेत्र में शाही लश्कर से घमासान युद्ध में दल खालसे को भी भारी क्षति उठानी पड़ी थी। अतः जत्थेदार बंदा सिंह ने पुनः रणनीति का निर्धारण करने के लिए पंचायत बुलाई। निर्णय यह हुआ कि बादशाह के निकट होने के कारण हमारी शक्ति कम हो जाती है। क्योंकि स्थानीय प्रशासकों को शाही लश्कर से तुरन्त सैनिक सहायता पहुंच जाती है। यदि हम पुनः उत्थान चाहते हैं तो हमें अपने खोय हुए क्षेत्रों पर पुनः कब्जा कर लेना चाहिए क्योकि इस समय बादशाह लाहौर में बिमार पड़ा हुआ है तथा उसकी मानसिक स्थिती भी बिगड़ी हुई है। निर्णय उचित था अतः दल खालसा पर्वतों की तलहटी के मार्गो से होता हुआ कीरतपुर पहुंचा, वहां से योजना अनुसार सढौरा क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। सढौरा किले अथवा नगर में दल खालसा की पहले से ही धाक थी और वहां कोई विशेष सैनिक दस्ता भी न था जो दल खालसा का सामना कर सके। अतः थोड़े से प्रयत्न के पश्चात् ही नगर और किले दोनों सिक्खों के हाथ आ गये। ठीक इसी प्रकार अगली कार्रवाई में लोहगढ़ किले को पुनः प्राप्त कर लिया गया। जैसे ही खालसा का पुनः इन स्थानों पर कब्जा हुआ आस-पास के क्षेत्रों में सिक्खों को फिर से अपनी गति विधि बढ़ाने का शुभ अवसर प्राप्त हो गया। उन्होंने सर्वप्रथम किलों की मरम्मत की और उन में खाद्यान व शस्त्रों अस्त्रों का भण्डार बनाना प्रारम्भ कर दिया। नये सैनिकों की भर्ती भी उन्हें मिलने लगी।

इन सभी प्रकार की घटनाओं का समाचार जब बीमार बादशाह को मिला तो उसने जैनुदीन अहमदशाह को सरहिन्द मण्डल का फौजदार नियुक्त किया। 800 प्यादे व 540 घोडसवार का पद प्रदान किया और वायदा किया। यदि वह सिक्खों पर विजय प्राप्त कर ले तो उस का पद बजीद खान के बराबर कर दिया जायेगा। यह पदोन्नति का वायदा केवल इसलिए किया गया कि वह समस्त ध्यान सिक्खों को कूचलने पर एकाग्र करे और मुहम्मद अमीन खान को पूरा सहयोग दे। उसे विशेष रूप में सिक्खों को कुचलने के लिए भेजा गया था। इन्हीं दिनों बादशाह का मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया और उस का स्वास्थ्य और गिर गया। इस कारण उसके दिये गये आदेशों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, क्योकि सभी उसके नये उत्तराधिकारी के चयन पर ध्यान देने में व्यस्त थे और अपने-अपने पक्ष के शहजादों को सत्ता हथियाने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे। इसी बीच 18 फरवरी 1712 ई० को सम्राट बहादुरशाह का देहांत हो गया। जिस कारण शहजादे एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गये और उनका आपसी युद्ध प्रारम्भ हो गया। जब यह सूचना दल खालसा को मिली तो वह इस समय का भरपूर लाभ उठाने के उद्देश्य से अपने सैनिक संगठन को सुदृढ़ बनाने की चेष्टा में व्यस्त हो गए।

नया स्वयंमेव बना सम्राट जहांदार शाह कोई अधिक योग्यता नहीं रखता था। उसका अधिकांश समय सुरा-सुन्दरी में व्यतीत होता और वह राग-रंग का महिफले सजाकर ऐशा-आराम का जीवन जीने में, समय और धन नष्ट करता रहता था। यह डरपोक-बुजदिल प्रवृति का व्यक्ति था। अतः इस की आज्ञा की अवहेलना कदम-कदम पर होती थी। इसलिए सत्ता पर इस की पकड़ ढीली पड़ती जा रही थी। उसकी इस त्रुटि का लाभ उठाते हुए इसके भतीजे फर्रूखसीयर ने इस पर आक्रमण कर दिया। वह अपने पिता के खून का बदला इस से लेना चाहता था और वह उन दिनों बंगाल व बिहार प्रांत का सूबेदार (राज्यपाल) नियुक्त था। बादशाह जहांदार शाह और फर्रूखसीयर के मध्य हुए युद्ध कें 31 दिसम्बर

1712 ई० जहांदार शाह पराजित हो गया और उस की हत्या 1 फरवरी 1713 ई० को कर दी गई।

फर्रूखसीयार के सम्राट बनने पर उसने सिक्खों के प्रति बहुत कड़ी नीति अपनाई। उसने फिर से मुहम्मद अमीन को भारी लश्कर देकर सढ़ौरा किला फतेह करने भेज दिया। यह सिपासलाहर कुछ समय के लिए सढौरा का घेराव छोड़ कर जहांदार शाह की सहायता के लिए दिल्ली गया हुआ था। इसके वापस लौट आने पर सढौरा के किले व लोहगढ़ के किले पर लम्बे समय का घेराव कर शाही सेना बैठ गई। सिक्ख समय-समय पर आकस्मात छापा मार युद्ध करते और कुछ रणसाम्रगी अथवा खाद्यान लूट कर किले में ले जाते। इस प्रकार छः माह से अधिक व्यतीत हो गये। जैनुद्दीन अहमद खान की तोपों के गोलों का सिक्खों की गद्दी पर कोई अधिक प्रभाव नहीं पड़ रहा था। अतः उसने एक ऊँचा चबूतरा बना कर उस पर तोप लगाई जिसकी मार प्रभावशाली थी। सिक्खों ने किले के अन्दर से एक सुरंग बनाई और उस तोप के पास उसका अर्ध रात्रि को मुंह खोल दिया। वर्षा की अंधेरी रात में उन्होंने रस्सी से बांध कर दूसरी तरफ से घोड़े से तोप को खीचवाया। वह सुरंग तक खीची चली आई। परन्तु सुरंग के पास पहुंच कर तख्ते से पलट कर पानी में गहरे गड्डे में गिर गई। इस प्रकार यह सिक्खों की योजना विफल रही।

सढौरे के किले का घैराव बहुत देर तक चलता रहता परन्तु इसमें नये सिरें से प्राण डालने के लिए नये बादशाह फर्रूखसीयर ने मुहिम का नेतृत्व अबदुस्समद खान को दे दिया और उसको वचन दिया कि यदिं तुम सिक्खों का दमन करने में सफल हो जाते हो तो लाहौर का सूबेदार (राज्यपाल) तुम्हें ही नियुक्त किया जायेगा। केन्द्र सरकार की तरफ से सिक्खों का पलड़ा हल्का हो गया क्योंकि समस्त केन्द्रिय सेना का यहीं दबाव बना रहने लगा।

अबदुस्समद खान ने नई नीति के अंतरगत एक-एक करके सढौरा और लोहगढ़ को विजय करने की ठानी। इस पर सिक्खों ने एक रात अकस्मात् किला त्याग दिया और वे लोहगढ़ के किले में चले गये। जब लोहगढ़ के किले पर भी शत्रु सेना का अधिक दबाव हो गया तो सिक्खों ने उसे भी इसी विधि अनुसार त्याग दिया और नाहन की पहाड़ियों में अलोप हो गये। शत्रु सेना ने उनको कई स्थानों पर बिखरे हुए देखा परन्तु शाही सेना में से किसी का सहास नहीं हुआ कि वे सिक्खों का पीछा करें क्योकि वे जानते थे कि इन को पराजित नहीं समझाना चाहिए। यह शत्रु को घेरे में लेकर घात लगा कर आक्रमण कर देते है। अतः सिक्ख को जहां जाते है जाने दिया। यह घटना नवम्बर माह के मध्य में घटित हुई। इसके पश्चात् मुग़ल सेना ने इन दोनों किलों को गिरा कर सदा के लिए उनका अस्तित्व समाप्त कर दिया।

लोहगढ़ खाली हो जाने के बाद अबदुलसमद खान तो अपनी सूबेदारी के चक्कर में लाहौर चला गया। उसका पुत्र जकरिया खान और फौजदार शम्भु को दिल्ली बादशाह फर्रूखसीयार की सेवा में भेजा, जो कि बादशाह को सिक्खों की पराजय का विवरण बतायें ताकि बादशाह से पुरस्कार प्राप्त हो सके। बादशाह ने इन्हें एक खिलअत, जडाऊ कलंगी, झन्डा और घौसा (नगारा) उपहार स्वरूप दिये।

दल खालसे व उसके नायक का गुप्तवास

केन्द्रीय प्रशासन की दृष्टि सिक्खों पर कड़ी हो गई तो उन दिनों दल खालसा को बहुत बड़ी कुरबानियां देने के पश्चात् भी अन्त में पराजय का मुंह देखना पड़ रहा था। अतः दूसरी बार लोहगढ़ और सढौरा किले छिन जाने के बाद खालसा पंचायत को बहुत गम्भीर हो कर नई रणनीति तैयार करनी थी। पंजाब के मैदानी क्षेत्रों में सिक्खों को गैरकानून लोग (बागी) घोषित कर दिया गया था, उनका घर घाट लूट लेना कोई अपराध न था बल्कि उनको पकड़वाने में सहायता करने वालों को पुरस्कृत किया जा रहा था। ऐसे वातावरण में जहां सिक्ख होना एक अपराध माना जाने लगा हो। वहां सिक्खी का पनपना असम्भव सी बात बनती जा रही थी। ऐसे में दल खालसा को नये जवानों की भरती अथवा धन इत्यादि की आवश्यकताओं की पूर्ति भी कठिन हो रही थी। अतः दल खालसा ने निर्णय लिया कि कुछ समय के लिए शांत हो जाए और किसी उचित समय की प्रतीक्षा करे अथवा वह क्षेत्र चुने जो सैनिक दृष्टि से कमजोर हो या जहां केन्द्रीय सैन्य बल सहज में न पहुंच पाएं। उन दिनों देश में वर्षा न होने के कारण अकाल जैसी स्थिति उत्पन्न हो रही थी तथा दल खालसा के जवानों को अपने परिवारों की सुरक्षा की भी चिंता सत्ताए जा रही थी। ऐसे में कोई विकल्प का न होना बहुत बड़ी दुविधा बन गई थी।

दल खालसा के समक्ष सर्वप्रथम अपने परिवारों की सुरक्षा का भार था। अतः पंचायत ने निर्णय लिया अधिकांश जवान छोटी-छोटी टुकड़ियों में अपने घरों को जाएं और उन को सुरक्षा प्रदान करें अथवा किसी शिवालिक पर्वत की घाटियों में उन को स्थानांतरित कर दिया जाएं। जिस से वे शत्रु की कुदृष्टि से सुरक्षित हो जाए। जब विपत्ति काल समाप्त हो जाए तो पुनः संगठित हो कर अपने लक्ष्य की पूर्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाये। दल खालसा में अधिकांश जवान मालवा क्षेत्र के थे जिनके परिवारों पर प्रशासन कड़ी दृष्टि रखे हुऐ था और उन पर अत्याचारों का बाजार गर्म था। इसलिए रोपड़ जिले के जवान सामुहिक रूप में अपने घरों को लौट आये क्योकि यह क्षेत्र कहलूर पर्वत माला के निकट था और दल खालसा इन्हीं पर्वतों में शरण लिए हुए था। रोपड़ जिले का फौजदार बड़ी संख्या में सिक्खों के आगमन को देखकर भाग खड़ा हुआ और सरहिन्द पहुंच गया। वहां से वह कुमक लेकर जब वापस लौटा तब तक सिक्ख जवान अपने परिवारों को साथ लेकर वापस लौट चुके थे। परन्तु कहीं-कहीं छोटी-मोटी दल खालसा के जवानों से झड़पें हुई। जिस में दोनों पक्षों को बराबर की क्षति उठानी पड़ी।

दल खालसा का नायक बंदा सिंह भी पंचायत के निर्णय अनुसार अपने परिवार से मिलने अपने ससुराल चम्बा पहुंच गया। परन्तु उसे अब भी मन की इच्छा थी कि वह पुनः खालसे की प्रगति देखना चाहता था। किन्तु एक बार की गई चूक के कारण अब सब कुछ असम्भव

जान पड़ता था। क्योकि शत्रु सावधान हो चुका था और कुछ प्रकृति द्वारा संयोग भी नही बन रहा था। अत: सब उचित समय आने की प्रतीक्षा में इधर-उधर समय काट रहे थे।

बंदा सिंह का मन हुआ कि वह अपने जन्म स्थान राजौरी इत्यादि क्षेत्र का एक बार दौरा करे परन्तु यह सब कुछ सम्भव न था क्योंकि कदम-कदम पर शत्रु सतर्क बैठा हुआ था। परन्तु बंदा सिंह बुजदिल तो था नहीं वह अपने अंगरक्षों के एक दल को लेकर किसी न किसी विधि से राजौरी पहुंच ही गए। वहां लम्बे समय की जुदाई के पश्चात् अपने पूर्वजों से मिले। परन्तु सुरक्षा कारणों से वही एक सुरक्षित पहाड़ी क्षेत्र को अपना डेरा बनाया और अपने पूर्वजों के दबाव में अपनी बिरादरी के एक परिवार, वजीराबाद के एक क्षत्रिय शिवराम की सुपुत्री कुमारी साहिब कौर के साथ दूसरा विवाह करवा लिया। जिस के उदर से रणजीत सिंह नामक पुत्र उत्पन हुआ। इसी बालक से बंदा सिंह का वंश चलता आ रहा है। अनुमान लगाया जाता है कि बंदा सिंह उचित समय की ताक में लगभग सवा वर्ष यहां रहे। यहीं रह कर उन्होंने दल खालसा की अगामी गति विधि की योजनाएं बनाई। उन्हें जैसे ही मालूम हुआ लाहौर का सूबेदार अब्दुलसमद कसूर क्षेत्र में भट्टियों का फसाद मिटाने गया हुआ है। तभी उन्होंने समस्त बिखरे हुए सिक्खों को लामबद्ध (युद्ध के लिए तैयार) किया।

दल खालसा का पुन: प्रकट होना

खालसा दल के सेना नायक बंदा सिंह बहादुर ने लगभग एक अथवा डेढ़ वर्ष तक गुप्तवास रखकर अनिश्चता का जीवन जीया। इस में उन के स्वयं के परिवारिक कारण भी थे। परन्तु दल खालसा का मुख्य उद्देश्य केन्द्रीय मुग़ल सरकार का ध्यान अपनी ओर से हटाना था और नये सिरे से दल खालसा का पुनरगठन करना अथवा अपने जवानों के परिवारों को सुरक्षित क्षेत्रों में बसाना तथा विपत्ति काल में अपने लिए नये सुरक्षित क्षेत्र ढूंढना था।

इस कार्य में सफलता मिलते ही सन् 1715 ई० की बसंत ऋतु आते ही दल खालसे ने अपने निर्धारित लक्ष्य को सम्मुख रख कर जम्मू क्षेत्र के मैदानों में लामबदू हुए और सर्वप्रथम कलानौर को अपने नियन्त्रण में लेने का लक्ष्य रखा। सिक्खों के प्रकट होने का समाचार सुनकर कलानौर के फौजदार सुहराव खान और उसके कानूनगां संतोष राय ने अड़ोस-पड़ोस के परगनों से अतिरिक्त सेना मंगवा ली और बहुत सी जहादियों की भीड़ भी इक्ट्ठी कर ली। परन्तु सिक्खों के एक धावे में सभी भाग खड़े हुए और कई तो पीछे मुड़कर देखने वाले भी नहीं थे। स्वयं सुहराब खान, संतोष राय व अनोख राय अपने प्राण बचा कर रणभूमि से भाग निकले। इस प्रकार कलानौर फिर से सिक्खों के हाथ आ गया। बंदा सिंह ने इस बार जनसाधारण के हितों का बहुत ध्यान रखा और अच्छी प्रशासन व्यवस्था करके बटाले नगर की तरफ प्रस्थान किया।

बटाला नगर का फौजदार मुहम्मद दाइम फौजें लेकर टकराव के लिए नगर के बाहर आ गया और मोर्चा लगाकर बैठ गया। लगभग 6 घंटे तक खूब घमासान युद्ध हुआ। दोनों पक्षों की भारी क्षति हुई परन्तु मुग़ल सेना पराजित हो कर भाग खड़ी हुई। अत: बटाले पर दल खालसे का पुन: अधिकार स्थापित हो गया।

जब इन विजयों का समाचार बादशाह फर्रूखसीयार को मिला तो उसके क्रोध की सीमा न रही। वह बौखला उठा उसने लाहौर के सुबेदार (राज्यपाल) अब्दुलसमद खान को कड़े शब्दों में पत्र लिखा और कहा-वह अपनी समस्त शक्ति सिक्खों के दमन व उन के नेता को पकड़ने में लगा दे। इस बीच सिक्खों ने रायपुर इत्यादि क्षेत्र जीत लिये।

दल खालसा को अभास तो था कि हमारी नई विजयों के समाचारों ने बादशाह फर्रूखसीयर की नींद हराम कर दी होगी। अत: वे केन्द्रीय मुग़ल सेना के हस्तक्षेप से पहले अपने लिये कोई सुरक्षित स्थान अथवा किला बना लेना चाहते थे। अत: जत्थेदार बंदा सिंह ने कलानौर व बटाला के मध्य में एक किले के निर्माण का कार्य प्रारम्भिक अवस्था में ही था कि दिल्ली की ओर से नायब आरिफ बेगखान की अध्यक्षता में बहुत बड़ा मुग़लिया शाही लश्कर दल खालसा के विरूद्ध कारवाही करने के लिए पहुंच गया।

स्थानीय राज्यपाल की सेना तथा केन्द्र की सेना दल खालसा की संख्या से दस गुना थी। किन्तु दल खालसे के नायक बंदा सिंह का साहस देखते ही बनता था। वह बिल्कुल विचलित नहीं हुए। वे अपने मोर्चा में अभय बनकर डटे रहे। प्रथम युद्ध में वे इतनी शूरवीरता से लड़े कि बादशाही जरनैल उनकी वीरता देखकर आश्चर्य चकित रह गये। एक बार तो ऐसा आभास होने लगा था कि शाही लश्कर की पराजय होने वाली है किन्तु वे अपनी संख्या के बलपर फिर से रणक्षेत्र पर काबू पा गये। विवश होकर दल खालसे को पीछे हटना पड़ा। दल खालसा ने धैर्य से पीछे हटते हुए गुरदासपुर का रूख किया। शत्रु सेना ने उन का पीछा किया परन्तु सिक्ख पीछा करने वालो पर घायल शेर की भांती झुंझला कर आक्रमण कर देते और उन को भारी क्षति पहुंचाते। इस लिए शत्रु सेना अपने बचाव को ध्यान में रखकर उन से टक्कर लेने से कटने लगी। अत: दल खालसा धीरे-धीरे पीछे हटते हुए गुरदासपुर नंगल की गढ़ी में पहुंचने में सफल हो गये। इस गढी का वास्तविक नाम भाई दुनी चन्द का अहाता था। संयोग से इसके ईर्द-गिर्द बहुत ऊँची पक्की दीवार थी और भीतर ऐसा खुला स्थान था, यहां दल खालसा के जवान समा सकते थे। जत्थेदार बंदा सिंह ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया सभी लोग शीघ्रता से इस आश्रय स्थल को किले में बदलने के कार्य में जुट जाये और प्रत्येक प्रकार की रण सामग्री एकत्र करने में ध्यान दे। बस फिर क्या था सिक्खों ने शत्रु के निकट आने से पूर्व खाद्यान गोला बारूद, अस्त्र शस्त्र किसी भी कीमत पर खरीद लिये और गढ़ी को मजबूत किले में बदलने में जुट गये। उन्होनें शत्रु को अहाते से दूर रखने के लिए इर्द-गिर्द एक खाई बना ली और

उसे नजदीक की नहर के पानी से भर लिया। इसके साथ ही उन्होंने मुख्य नहर काट कर उस का पानी इस प्रकार फैला दिया कि शत्रु उसके निकट न आ सके चारों ओर कीचड़ और दलदल का प्रदेश बना दिया।

गुरदास, नंगल के अहाते का घेराव

अप्रैल सन् 1715 ई० के आरम्भ के शाही सेना ने गुरदास नंगल पहुंचते ही दुनी चंद के अहाते को घेरे में ले लिया और सभी मार्ग बन्द कर दिये। उस समय लाहौर के सूबेदार के पास लगभग 30 हज़ार प्यादे व घोड़सवार और बहुत बड़ा तोपखाना था। अबदुस्समद खान व उसके पुत्र जकरिया खान ने अपनी तथा अपने सहायकों की कई हज़ार सेना के साथ दुनी चन्द के अहाते पर ज़ोरदार आक्रमण किये परन्तु उनकी सभी चेष्टायें निष्फल रही। मुट्ठी भर सिक्खों ने इस दिलेरी और वीरता से अपने स्थान की रक्षा की कि उन को नाकों चने चबवा दिये। इब्रतनामें का लेखक मुहम्मद कासिम जो कि प्रत्यक्षदर्शी था लिखता है-जनूनी सिक्खों के बहादुरी और दिलेरी के कारनामें आश्चर्य चकित कर देने वाले थे। जल्दी ही सिक्खों ने गुरिला युद्ध का सहारा लिया। वे प्रतिदिन दो या तीन बार प्रायः चालीस अथवा पचास की संख्या में एक काफिले के रूप में अहाते से बाहर निकलते और शाही लश्कर पर टूट पड़ते। गफलत में अथवा सहज में बैठे सिपाहियों को क्षण भर में काट डालते और खाद्यान अस्त्र-शस्त्र इत्यादि जो हाथ लगता लूट ले जाते। जब शाही सेना सर्तक होती वे तब छू-मंत्र हो जाते। इन बातों का शाही लश्कर के मन पर इतना आतंक बैठा कि वह अल्लाह से दुआ करते कि कुछ ऐसा हो जाए कि बंदा सिंह यह दुनी चन्द की गढ़ी खाली कर के कहीं और चला जाए। जिससे उन को रोज-रोज के आतंक से राहत मिले।

मुग़ल सेना ने धीरे-धीरे गढ़ी का घेरा तंग करना शुरू कर दिया क्योंकि उन्हें ऐहसास हो गया था कि अब सिक्खों के पास गोला बारूद समाप्त हो चुका है। सिक्खों को घिरे हुए कई महीने हो गये, आहते में खाद्य सामग्री बिलकुल समाप्त हो चुकी थी। जब सिक्खों के भोजन की स्थिति शोचनीय हो गई तब वे जवान जो तोपों, बन्दूकों अथवा तीरों से न डरे थे, उन्हें भूख ने तोड़ कर रख दिया।

दल खालसा का मत था कि शत्रु लम्बे घिराव से स्वयं तंग आ चुके है। अतः वे जल्दी ही घेरा उठा लेगें। परन्तु मुग़ल सेना बादशाह के भय के कारण घेरा उठाने की स्थिति में नहीं थी। इस पर खालसा पंचायत ने गढ़ी खालीकर देने का निर्णय ले लिया। उनका मत था कि भूख से व्याकुल होकर मरने से लड़कर कर मरना अच्छा है। परन्तु दल खालसा के नायक जत्थेदार बंदा सिंह इस बार भाग निकलने के लिए सहमत नहीं हुए। उनका मानना था कि यदि हम कुछ दिन और भूख का दुख झेल ले तो सदैव के लिए विजय हमारे हाथ लगेगी। परन्तु जवानों से भूख का दुःख झेलते नहीं बनता था। इस बात को लेकर दल खालसा में गुटबन्दी हो गई। अधिकांश जवान वयो-वृद्ध नेता विनोद सिंह के विचारों से सहमति रखते थे और उनका मानना था कि रणक्षेत्र में जुझते हुए वीरगति पाना ही उचित है न कि भूख की व्याकुलता से पीड़ित होकर प्राण त्यागना। अतः मतभेद गहरा हो गया। अंत में विनोद सिंह जी के सुपुत्र काहन सिंह जी ने एक प्रस्ताव रखा और कहा जो लोग गढ़ी छोड़ना चाहें वे उसे त्याग दें और जो यहीं रह कर शहीदी देना चाहते है, वे यहीं रहे, इस बात को लेकर आपस में झगड़ना उचित नहीं। ऐसा ही किया गया। बहुत बड़ी संख्या में जवानों ने सरदार विनोद सिंह जी के नेतृत्व में दुनी चन्द का आहतानुमा गढ़ी त्याग दी और शत्रु सेना के साथ संघर्ष करते हुए दूर कहीं अदृश्य हो गये। शत्रु सेना भी बहुत तंगी में थी। वे यही तो चाहते थे कि किसी भी प्रकार इस तंग घेरे वाले स्थान से उनका छुटकारा हो, जहां प्रत्येक क्षण आतंक के छाया में जीना पड़ता है। अब पीछे वही जवान रह गये थे जो जत्थेदार पर अथाह श्रद्धा-विश्वास रखते थे। इनमें कई तो बंदा सिंह जी के वचनों को सत्य-सत्य कर मानने वाले थे और उनके एक संकेत पर अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तत्पर रहते थे। कुछ जवानों ने बंदा सिंह जी से विनम्र विनती की कि वह अब कोई चमत्कार दिखाए जैसा कि वह प्रायः विपत्ति काल में आलौकिक शक्तियां का प्रदर्शन करते रहते ही थे। परन्तु इस बार बंदा सिंघ जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा-मैं प्राचश्चित करना चाहता हूँ क्योंकि हमारे हाथों न जाने कितने निर्दोष व्यक्तियों की भी हत्या हुई है। अब हम साम्राज्य स्थापित करने के लिए नहीं लड़ेंगे बल्कि अपनी भूलों को सुधारनें के लिए अपने किये अपराधों को अपने खून से धो देने के लिए मृत्यु से लड़ेगे। यही हमारा आलौकिक शक्ति का प्रदर्शन अथवा शहीदी प्राप्त करने का चमत्कार होगा।

सभी जवानों ने उनके हृदय के भावों को समझा और उन पर पूर्ण विश्वास दर्शाया और कहा आप जैसे कहेंगे, हम उसी प्रकार अपने जीवन का बलिदान दे देंगे। इस पर बंदा सिंह जी ने कहा-गुरमति सिद्धातों अनुसार किये गये कर्मो का लेखा देना ही पड़ता है। अतः हमें पुनर्जन्म न लेना पड़े। इसलिए हमें इस जन्म में दण्ड स्वीकार कर लेना चाहिए। ताकि हम प्रभु चरणों में स्थान प्राप्त कर सकें। वैसे भी स्वेच्छा से शहीदी प्राप्त करना अमूल्य निधि है।

जत्थेदार बंदा सिंह जी का आत्म समर्पण

सरदार विनोद सिंह जी समय रहते खाद्यान के अभाव को देखते हुए दुनी चन्द की अहातानुमा गढ़ी खाली कर गये। पीछे केवल 250-300 के लगभग योद्धा रह गये। जिन्होंने भूखे मरना स्वीकार कर लिया। इन जवानों ने अपने जत्थेदार के आदेश पर पेट की आग बूझाने के लिए वृक्षों के पत्ते तथा अन्य पशुओं का मासं खा कर कुछ दिन व्यतीत कर दिया। किन्तु असमान्य परिस्थितियों के कारण सभी जवान कुपच रोग से पीड़ित रहने लगे। कई तो बिमारी की दशा में शरीर त्याग कर परलोक सिधार गये। भोजन के अभाव में लगभग सभी जवान सूख कर

काांटा बन गये और कमजोरी की हालत में निडाल हो गये।

अहाते के अन्तर सिक्ख अर्द्धमृत अवस्था में पड़े थे। रोग व दुर्बलता के कारण शिथिल, युद्ध करने में असमर्थ थे। परन्तु शाही सेना पर सिक्खों का ऐसा आतंक बैठा हुआ था कि भय के कारण कोई अहाते के भीतर जाने का साहस न करता था। मुग़ल सेना अध्यक्ष अब्दुस्समद खान ने सिक्खों को एक पत्र द्वारा कहा-यदि तुम द्वार खोल कर आत्मसमर्पण कर दोगें तो मैं तुम्हें वचन देता हूं बादशाह से तुम्हारे लिए क्षमा याचना करूगां। कोई भी सिक्ख इस झांसे में आने वाला था ही नहीं। वे तो पहले से ही आत्म बलिदान देने के लिए तैयार बैठे थे। उन्होनें लड़ना बंद कर कर दिया था। परन्तु आत्म समर्पण के समय आने की प्रतीक्षा में थे। अत: वह समय भी आ गया। सिक्खों ने दरवाजा खोल दिया। बस फिर क्या था शत्रु जो उनके नाम से कांपते थे। अब उन की बेबसी पर बहादुरी के जौहर दिखाने लगे। सफलता के गर्व में अब्दुस्समद खान अच्छे व्यवहार के सभी वचन भूल गया और निढाल हो रहे सिक्खों के हाथ-पांव जकड़ कर उन्हें यातनायें दी गई। कुछ एक बेसुध सिक्खों का उसी स्थान पर वध कर दिया गया और उनके पेट इस लोभ मे चीर दिये गये कि कहीं वे स्वर्ण मुद्रायें निगल न गये हो। इस प्रकार समस्त मैदान रक्त रंजित कर दिया गया। इसके पश्चात् उनके सिर कांट कर घास-फूस से भर दिये गये और भलों पर टांग लिये। गुरदास नंगल का गांव तथा भाई दुनी चन्द का अहाता सब तहस-नहस कर दिये गये। अब वहां केवल एक खण्डहर शेष है। यह घटना दिसम्बर के प्रारम्भ में सन् 1715 ई० को हुई।

मुहम्मद हादी कामवर खान लिखता है 'यह किसी की बुद्धिमत्ता या शूरवीरता का परिणाम न था अपितु परमात्मा की कृपा थी कि यह इस प्रकार हो गया, अन्यथा हर कोई जानता है कि स्वर्गीय बादशाह बहादुर शाह ने अपने चारों शाहजादों तथा असंख्य बड़े-2 अफसरों सहित इस विद्रोह को मिटाने के कितने प्रयत्न किये थे। परन्तु वह सब विफल हुए थे।

कैदी सिक्खों के साथ दुर्व्यवहार

7 दिसम्बर सन् 1715 ई शाही सेना ने गढ़ी गुरदास नंगल पर कब्जा कर लिया। बहुत बड़ी संख्या में बेसुध या अर्द्धमरे सिक्खों को मार दिया गया। जो बचे उन की संख्या लगभग 300 के करीब थी। अब्दुस्समद खान सिक्ख कैदियों को लाहौर ले गया। शाही सेना का ऐसा विचार था कि दल खालसा का नायक जत्थेदार बंदा सिंह करामाती शक्तियों का स्वामी है। अत: वे बंदा सिंह जी से बहुत भयभीत रहते थे। इस लिए उन को भय था कि बंदा सिंह जी कैद में से कहीं अदृश्य हो कर लुप्त न हो जायें। अत: उनके पैरों में बेडियां, टांगों में छल्ले, कमर के आस-पास संगल तथा गलें में कुंडल डाले हुए थे। और इन वस्तुओं को लकड़ी के खम्बों में साथ बांधा हुआ था। इस प्रकार बंदा सिंह जी को अच्छी तरह जकड़ कर लोहे के पिंजरे में डाला हुआ था। इस पिंजरे की निगरानी दो मुग़ल सिपाही हाथ में नंगी तलवार लिये कर रहे थे। बंदा सिंह के सहायक अधिकारियों को बेड़िया डाली हुई थी। और उन्हें लंगड़े, निर्जीव तथा मरियल गधों, टटूओं या ऊँठों पर चढ़ाया हुआ था। उनके सिरों पर टोपियां डाली हुई थी। इनके आगे ढोल तथा बाजा बजता आ रहा था और पीछे मुग़ल सिपाहियों ने भालों पर सिक्खों के सिर टंगे हुए थे। कैदियों के पीछे विजय के रूप में बादशाही अमीर फौजदार और कई हिन्दू राजा अपनी सेना सहित चले जा रहे थे। इस प्रकार इस जलूस को लाहौर नगर में फिराया गया ताकि लोगों को भयभीत किया जा सके और मुग़लों का दबदबा बिठाया जा सके।

लाहौर से सिक्खों को दिल्ली ले जाने का कार्य ज़करिया खान को सौपा गया। परन्तु उसे गिरफ्तार किये गये सिक्खों की संख्या बहुत कम प्रतीत हुई। उसने सारे पंजाब क्षेत्र में सिक्खों की खोज शुरू कर दी। उनके आदेश पर फौजदार और चौधरी गांव-गांव में घूमे। इस प्रकार उन्होंने अनेकों निरापराध लोगों को पकड़ कर जकरिया खान के पास भेज दिया जिस से कैदी सिक्खों की संख्या में बढ़ोतरी की जा सके। लगभग 400 बेगुनाह सिक्ख इन कैदियों के साथ और सम्मिलित कर दिये गये। इन लोगों का अपराध केवल सिक्ख धर्म धारण करना था अथवा गैर मुस्लिम होना था।

लाहौर से दिल्ली रवाना करते समय इन सभी सिक्खों की बहुत दुर्गति की गई, सभ्य समाज में ऐसी करतूत जाहिल अथवा अर्द्ध जंगली विजेता ही कर सकते हैं। बन्दा सिंह की तरह इस बार सभी कैदियों को लोहे की जंजीरों से जकड़ा हुआ था और दो-दो या तीन-तीन करके टांगों पर लादा गया था। सरहिन्द पहुंचने पर उनको वहां के बाज़ारों में घुमाया गया, जहां पर लोग उनका मजाक उड़ाते और गालियां देते थे। इन सिक्खों ने यह सब कुछ शब्द (गुरुवाणी) पढ़ते हुए धैर्य से सह लिया।

27 फरवरी 1716 को ये सिक्ख कैदी दिल्ली की सीमा के निकट पहुंचे। इस पर फरुखसीअर बादशाह ने मुहम्मद अमीन खान को आदेश दिया कि वह सिक्ख कैदियों को एक विशेष जलूस की शकल में दिल्ली के बाजारों में घुमाता हुआ बादशाही महल तक लापये। जलूस में सब से आगे मारे गये सिक्खों के थे। जिन्हें घास फूस से भरा हुआ था और इन्हें भालों पर टंगा हुआ था। इस प्रकार उनके बाल हवा में उड़ रहे थे। उसके पश्चात् एक हाथी झूमता हुआ आ रहा था जिस पर दल खालसा के सेना नायक बन्दा सिंह बहादुर को लोहे के पिंजरे में कैद किया हुआ था। उनका मजाक उड़ाने के लिए, उनके सिर पर तिल्ले की कढाई वाली लाल पगड़ी डाली हुई थी और तिल्ले से कढाई की गई अनारों के फूलों वाली गूढ़े लाल रंग की पोशाक डाली हुई थी पिंजरे की निगरानी एक दूसरी अधिकारी मुहम्मद अमीन खान, नंगी तलवार हाथ में लेकर कर रहा था। उसके पश्चात् 740 सिक्ख कैदी दो-दो करके ऊँठों पर बांधे हुए लाये जा रहे थे। उनका एक-एक हाथ जकड़ा हुआ था। सिरों पर कागज़ या भेड़ की खाल की नोकदार टोपियां रखी हुई थीं, जिनको शीशे के मनकों से सजाया हुआ था। उनके मुंहों पर कालिख लगाई हुई थी। कुछ सिक्ख अधिकारियों को भेडों की खाल डाली हुई थी, जिसके बाल बाहर की ओर थे ताकि ये अधिकारी सिक्ख रीछों की तरह

दिखाई दें। सब के अन्त में तीन बादशाही अमीर घोड़ों पर आ रहे थे। इन के नाम थे मुहम्मद खान, कमरुदीन खान और ज़करिया खान।

पुस्तक 'इबारत नामे' के लेखक-मिजी मुहम्मद ने यह जलूस अपनी आंखों से देखा था। वह नमक मण्डी से बादशाही किले तक जलूस के साथ आ गया था। वह लिखता है-मुसलमान सिक्खों की इस दुर्दशा को देखकर खिल्लियां उड़ा रहे थे परन्तु भाग्यहीन सिक्ख जो इस अन्तिम दशा को प्राप्त हुए थे, वे बड़े ही प्रसन्न चित दृष्टगोचर हो रहे थे और अपनी नियति पर सन्तुष्ट थे। उनके चेहरों पर कोई उदासी अथवा अधीनता का चिन्ह अथवा प्रभाव नज़र नहीं आ रहा था। बल्कि ऊँटों पर चढ़े उनमे अधिकांश गायन में लीन थे शायद वे अपने मुरशद का कलाम पढ़ रहे थे।

बाजारों या गलियों में से यदि कोई उन्हें कहता कि अब तुम लोगों की हत्या कर दी जायेगी तो उत्तर देते हां वह तो होनी ही है, हम मृत्यु से कब डरते हैं यदि मौत से डरते होते तो शाही फौजों से आज़ादी की लड़ाई क्यों लड़ते? हमें तो घिर जाने के कारण, भूख और खाद्यान के अभाव की व्याकुलता ने तुम्हारे हाथों डाल दिया नहीं तो हमारी वीरता के कारनामे तुमने सुने ही होंगे। पुस्तक 'तवसिरतु-नाजिरीन' का लेखक सैयद मुहम्मद भी इस अवसर पर प्रत्यक्षदर्शी के रूप में वहीं विद्यमान था। वह कहता है-उस समय मैंने उनमें से एक को लक्ष्य करके कहा-'यह घमण्ड क्या और नखरा क्या?' उत्तर में उसने अपने माथे पर हाथ रख कर अपने भाग्य की ओर इशारा किया। उस समय मुझे उसका अर्न्तभावों को व्यक्त करने का ढंग बहुत अच्छा लगा ।

वे सारे अपमान और दुर्व्यवहार जो शत्रुओं ने उनके साथ किये। गुरू गोबिन्द सिंह के इन वीर सपूतों को उनकी स्वाभाविक उच्च मानसिक अवस्था से गिरा न सके।

मुहम्मइ हादी कामवर खान का लिखना है -'ये सिक्ख कैदी लोग बिना किसी आत्मग्लानि अथवा लज्जा के शान्तचित और प्रसन्नता पूर्वक जा रहे थे। वे शहीदों की मौत मरने के इच्छुक जान पड़ते थे।

जैसे ही यह जलूस शाही किले के निकट पहुंचा तभी बादशाह फर्रूखसियार ने आदेश दिया दल खालसा के नायक जत्थेदार बंदा सिंह और उसके अधिकारियों को अलग कर के शेष 694 सिक्ख कैदियों को सरवहार खान कोतवाल को सौंप दिया जाये। ताकि वह इन की हत्या का प्रबन्ध कर सके। बंदा सिंह की पत्नी, उसके चार वर्षीय पुत्र अजय सिंह तथा उसकी आया को शाही जनान खाने का प्रबन्धक दरबार खान नाज़र ले जाया गया। बंदा सिंह और उसके साथियों को इब्राहीम खान मीर-ए-आज़म की देख रेख में त्रिपोलिया कारावास में विशेष काल कोठियों में रखा गया। उन्हीं दिनों दल खालसा के नायक बंदा सिंह की पत्नी ने स्वाभिमान को ध्यान में रखते हुए कुएं में कूद कर आत्म हत्या कर ली।

दल खालसा के नायक बंदा सिंह तथा उसके सिपाहियों (सिक्खों) को हत्या का दण्ड

5 मार्च सन् 1716 ई० को दिल्ली के त्रिपोलिया दरवाजे की ओर के चबूतरे पर जो कोतवाली के सामने स्थित है, 100 सिक्खों की प्रतिदिन हत्या की जाने लगी। यह हत्याएं कोतवाल सरबराह खान की देख-रेख में प्रारम्भ हुई। इस प्रकार 7 दिन तक यह कहर भरा कत्लेआम जारी रहा। जल्लाद प्रत्येक सिक्ख सिपाही को कत्ल करने से पहले, काजी का फतबा सुनने को कहता था। क़ाजी हर सिक्ख सिपाही से पूछता यदि तुम इस्लाम कबूल कर लो तो तुम्हारी जान बख्श दी जाएगी। परन्तु कोई भी सिपाही अपनी जान बख्शी की बात सुनना भी नहीं चाहता था। उसे तो केवल शहीद होने की चाहत ही रहती थी। इस प्रकार सभी सिपाही काज़ी की बात ठुकरा कर जल्लाद के पास आगे बढ जाते और उसे कहते मैं मरने के लिए तैयार हूँ। इस प्रकार उन्हें पांच-पांच के समूहों में गले में रसे डालकर और उनको वट चढ़ा कर फांसी देकर मार दिया जाता। तद्पश्चात् उनके शवों को नगर के बाहर सड़कों के किनारे वृक्षों पर उल्टा टांग दिया जाता ताकि लोगों को भयभीत किया जा सके। बागियों को इस प्रकार मृत्यु दण्ड दिया जाता था। शवों में जब दुर्गंध पड़ जाती तो उन के मांस को पक्षी नौच-2 कर खा जाते। जब कभी रसों को वट चढ़ाने वाले जल्लादो की कमी महसूस की जाती तो बाकी सिक्ख सिपाहियों का सिर कलम कर दिया जाता। इस प्रकार वह त्रिपोलिया दरवाजे का चबूतरे वाला स्थल रक्त रंजित रहने लगा। इन हत्याओं के दृश्यों को बहुत से लोग देखने के लिए आते। इनमें उस समय के ईस्ट इंडिया कम्पनी के राजदूत-सर जौहर सरमैन तथा एडवर्ड स्टीफैनसन ने सिक्ख कैदियों का कत्लेआम अपनी आँखों से देखा। इन महानुभवों ने जो विचित्र प्रभाव अनुभव किया, वे अद्भुत घटनाक्रम को लिखित रूप में संकलित करके अपने हैड कवार्टर कलकत्ता भेजा। वे अपने पत्र न० 12 में दिनांक 10 मार्च सन् 1716 ई० को निम्नलिखित इबारत लिखते है :- वे सिक्ख कैदी जिन पर बगावत (देशद्रोह) का आरोप था। मृत्यु स्वीकार करते समय जिस धैर्य और साहस का परिचिय दिया वह अद्भुत और विचित्र घटना है। क्योंकि ऐसा होता नहीं, साधारणत: अपराधी डर के मारे चीखता चिल्लाता है, परन्तु वहां तो तथाकथित अपराधी मृत्यु के लिए स्वयं को समर्पित कर रहे थें और शांतचित्त अपने भाग्य को स्वीकार करते थे। सभी को जान बख्शी का लालच दिया गया बशर्ते वह इस्लाम कबूल कर ले परन्तु अंत तक यह नहीं मालुम हो सका कि किसी सिक्ख कैदी ने इस्लाम स्वीकारा हो।

इतिहासकार दुर्विन लिखता है -क्या हिदुंस्तानी तथा यूरोपीयन सारे ही दर्शक उस हैरान कर देने वाले धैर्य तथा दृढ़ता की प्रशंसा करने में सहमत थे। जिससे इन लोगों ने अपनी किस्मत को स्वीकार किया। देखने वालों के लिए इन का अपना धर्म नेता के लिए प्रेम तथा भक्ति बहुत आश्चर्यजनक थी। उनको मौत का कोई भय नहीं था और वह जल्लाद को मुक्तिदाता कह कर पुकारते थे।

इतिहासकार खाफी खान लिखता है -मैंने इन सिक्खों के निश्चय की ऐसी-2 बातें सुनी हैं, जिन पर बुद्धि यकीन नहीं करती। पर

जो कुछ मैंने अपनी आँखों से देखा है वह लिखता हूं इन कैदियों में एक लडका था जिसकी दाढ़ी मूंछ अभी निकल रही थी। उसकी माता ने अवसर देखकर अपने किसी समर्थक की सहायता से बादशाह और उसके मन्त्री सैय्यद अब्दुल से रोते हुए विनती की कि मेरा बेटा इन कैदियों में है। एक बार सिक्ख लूटमार को आये और इसे पकड़ कर ले गये थे। उस समय से ही यह इन के साथ है और उसका निर्दोष ही कत्ल किया जा रहा है ।

बादशाह को तरस आ गया और उसके बेटे की रिहाई के लिए उसने एक आदमी भेजा। वह स्त्री खलासी का आदेश लेकर ठीक उस समय पहुंची जब जल्लाद खून से भरी तलवार लेकर उसका कत्ल करने ही वाला था। उस के बेटे ने जोर से कहा कि उसकी माता झूठ बोल रही है। मैं तन-मन से गुरु पर बलिहार जाता हूँ, मुझे जल्दी मेरे साथियों के पास पहुंचाओ।

त्वारीख मुहम्मद शाही के लेखक ने इस कहानी को दूसरा रूप दिया है। उसके लेख से ज्ञात होता है कि जब जकरिया खां सिक्खों को लेकर दिल्ली के पास पहुंचा तो पता चला कि उस सामने वाले गांव में एक लडका सिक्ख बन गया है। उस समय उसे पकड़ लाने का आदेश दिया और कुछ आदमी उस गांव की ओर भेजे गए। परमात्मा का चमत्कार वह अभी शादी करवा कर आया ही था कि ये यमदूत पहुंच गए। डोली अभी घर भी नहीं पहुंची थी कि वह बेचारा पकड़ लिया गया और घर वालों की खुशी शोक में बदल गई। बेचारे के पिता का देहान्त हो चुका था, जो इस समय उसकी सहायता करता और बारातियों या गांव वालों में से किसी व्यक्ति में साहस न था कि इस निर्दोष को छुड़वाने का प्रयास करें। विधवा मां अपनी नई बहू को लेकर दिल्ली गई और बादशाह से न्याय की गुहार की। अत्याचार और अन्याय का समय, सत्य बोल कर छुटकारा नहीं मिलता था। यदि वह यह कह दे कि मेरे बेटे को जबरदस्ती पकड़ा है तो बेटे के साथ उसका अपना भी अंत है। इस लिए उसने यह झुठी कहानी कही कि एक बार सिक्खों ने उस का गांव लूटा तो उसका नवविवाहित बेटा भी लूट के साथ ले गये। उसकी पत्नी के हाथ-पैर की मेंहदी भी अभी उसी तरह है और गाना अभी तक किसी ने नहीं खोला।

बुढिया के विलाप ने पत्थर दिल अधिकारियों को मोम कर दिया और अंत में उस ने बादशाह से हुक्म ले ही लिया कि इस के पुत्र को छोड़ दिया जाये। यह आदेश लेकर जब वह दरोगा के पास पहुंची तो क्या देखती है कि कोतवाली के सामने सिक्खों की पंक्ति बैठी है। एक-2 को मुस्लमान बनने के लिए कहा जाता है। जब वह नही मानता तो कई प्रकार की यातनाएं देकर कत्ल किया जाता है। उस समय उसके बेटे की बारी थी और जल्लाद रक्त भरी तलवार लेकर काम आरम्भ करने को तैयार ही था कि वृद्धा ने यह आदेश-पत्र कोतवाल को दिया। वह लड़के को बाहर ले आया और कहा कि जा तुझे छोड़ा जाता है। परन्तु उस लड़के ने मुक्त होने से इनकार कर दिया और उँचे स्वर में चिल्लाने लगा -मेरी मां झूठ बोलती है। मैं दिलोजान से अपने गुरु का सच्चा सिक्ख हूं। मुझे शीघ्र अपने गुरु- भाईयों के पास पहुंचाओ। तारीख-ए-मुहम्मदशाही के लेखक का कथन है कि उसकी मां की र्दद‌भरी चीखें और अश्रुपुर्ण लिलकडियां तथा सरकारी अधिकारियों का समझाना-बुझाना उसे अपने धर्म के प्रति आस्था से डिगा न सका। वहां खड़े सभी दर्शकगण चकित रह गये। जब उस आस्थावान युवक ने कत्लगाह की ओर मुंह मोड़ा और शहीदी प्राप्ति के लिए उसने अपनी गर्दन जल्लाद के समक्ष झुका दी। एक क्षण में जल्लाद की तलवार ऊपर उठी और उस युवक का सिर कलम कर दिया गया और वह सिक्ख अपने गुरु की गोदी में जा विराजमान हुआ।

एक प्रसंग के बारे में तत्कालीन इतिहासकार लिखते है कि एक काल कोठरी में चार सिक्ख कैदियों को एक साथ रखा हुआ था। उनको भोजन के लिए दो रोटिंया रोशनदान से फैक दी गई। शत्रु का मत था कि कैदी भूखे है। इन रोटियों की प्राप्ति के लिए वे आपस में लड़ मरेगें परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। झरोखों से देख रहे पहरेदारों ने देखा। उन रोटियों को लेकर चारों कैदी आपस में विचार कर रहे थे कि इन रोटियों को बुर्जुग कैदी खा ले। हमें तो अब कोई कमजोरी नहीं, हम कुछ दिन और भूखे रह सकते है। परन्तु बुर्जुग कैदी कह रह थे हमने तो मरना ही है। यदि यह रोटियां तुम खा लो तो हो सकता है शायद तुम्हें और पंथ की सेवा करने का मौका मिल जाए। इस प्रकार वे रोटियां किसी ने भी नही खाई। अंत में यह निर्णय हुआ कि इन को बराबर बांट कर खाया जाय।

बंदा सिंह बहादुर को यातनाएं और उनकी हत्या

दल खालसा के सिपाहियों की 12 मार्च 1716 ई० तक सामूहिक हत्या का काम समाप्त हो गया था। परन्तु बंदा सिंह और उसके सहायक अधिकारियों को कई प्रकार की यातनाएं दी गई। उनसे बार-2 पूछा जाता था कि तुम्हारी सहायता करने वाले कौन लोग है और तुमने विशाल धन सम्पदा कहां छुपा कर रखी है? इस कार्य में मुग़ल प्रशासन ने तीन माह लगा दिये। परन्तु इस का परिणाम कुछ न निकला। सत्ताधिकारियों को इन लोगों से किसी प्रकार की कोई गुप्त सूचना न मिली। अंत में 9 जून सन् 1716 ई० को सूर्योदय के समय ही बंदा सिंह उसके चार वर्षीय पुत्र अजय सिंह, सरदार बाज सिंह, भाई फतह सिंह, आली सिंह, बख्शी गुलाब सिंह इत्यादि को जो दिल्ली के किले में बंदी थे। उन्हें सरबहार खान कोलवाल और इब्राहीमुदीन खान मीर-ए-आतिश की देख-रेख में जलूस के रूप में किले से बाहर निकाला गया। जिस प्रकार इन्हें दिल्ली लाते समय किया गया था। उस दिन भी बेडियों में जकड़े हुए बंदा सिंह को तिल्ले की कढाई वाली लाल पगड़ी और तिल्लेदार पोशाक पहनाई गई और हाथी पर बैठाया हुआ था। अन्य 26 सिक्ख जंजीरों से जकड़े हुए उनके पीछे चल रहे थे। इस प्रकार इन्हें पुराने नगर की गलियों में से कुतुबमीनार के समीप भूतपूर्व बादशाह बहादुरशाह की कब्र की परिक्रमा करवाई गई।

बंदा सिंह को हाथी से उतार कर पृथ्वी पर बैठाया गया और उन्हें कहा गया कि या तो वह इस्लाम स्वीकार करले अथवा मरने के

लिए तैयार हो जाओ। परन्तु बंदा सिंह ने बहुत धैर्य से मृत्यु को स्वीकार कर इस्लाम को ठुकरा दिया। इस पर जल्लाद ने उसके पुत्र को उस की गोदी में डाल दिया और कहा- लो इस की हत्या करो। परन्तु क्या कोई पिता कभी अपने पुत्र की हत्या कर सकता है? उन्होंने न कर दी। बस फिर क्या था जल्लाद ने एक बड़ी कटार से बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उसका तड़पता हुआ दिल निकाल कर बंदा सिंह के मुंह में ठोंस दिया। धन्य था वह गुरु का सिक्ख जो प्रभु की इच्छा में अपनी इच्छा मान पत्थर की मूर्ति की भांति दृढ़ खड़ा रहा। जब बंदा सिंह विचलित न हुआ। समीप में खड़े मुहम्मद अमीन खान ने जब बंदा सिंह की ओर उस की आँखों में झांका तो उसके चेहरे की आभा किसी अदृश्य दिव्य शक्ति से जगमगा रही थी। वह इस रहस्य को देख हैरान रह गया। उसने कोतुहलवश बंदा सिंह से साहस बटोर कर पूछ ही लिया। आप पर मुग़ल प्रशासन की तरफ से भयानक रक्तपात करने का दोष है जो अपराध अक्षम्य है। परन्तु मेरे विचारों के विपरीत ऐसे दुष्ट कर्मो वाले के मुख-मण्डल पर इतना ज्ञान तेजोमय ज्योति क्यों कर झलकती है? तब बंदा सिंह ने धैर्य के साथ उत्तर दिया- जब मनुष्य अथवा कोई शासन पापी और दुष्ट हो जाए कि न्याय का मार्ग छोड़ कर अनेक प्रकार के अत्याचार करने लग जाएं, तो वह सच्चा ईश्वर अपने विधान अनुसार उन्हें दण्ड देने के लिए मेरे जैसे व्यक्ति उत्पन्न करता रहता है। जो दुष्टों का संहार करें और जब उनका दण्ड पूरा हो जाए तो वह तुम्हारे जैसे व्यक्ति खड़े कर देता है ताकि उन्हें दण्डित कर दे।

इस्लाम न कबूल करने पर जल्लाद ने पहले कटार से बंदा सिंह की दाई आँख निकाल दी और फिर बाई आंख। इसके पश्चात् गर्म लाल लोह की संडासी (चिमटियों) से उनके शरीर के मांस की बोटियां खीच-खीचकर नोचता रहा। जब तक उनकी मृत्यु नहीं हो गई। इन सब यातनाओं में बंदा सिंह ईश्वर और गुरु को समर्पित रहा। वह पूर्णत: सन्तुष्ट था। उसने पूर्ण शांतचित, अडिग तथा स्थिर रह कर प्राण त्यागे। बाकी के सिक्ख अधिकारियों के साथ भी इसी प्रकार का क्रूर व्यवहार किया गया और सब की हत्या कर दी गई।

तत्कालीन इतिहासकारों के एक लिखित प्रसंग के अनुसार बादशाह फर्रूखसियार ने बंदा सिंह वा उसके साथियों से पूछ-ताछ के मध्य कहा - तुम लोगों में कोई बाज सिंह नाम का व्यक्ति है जिस के वीरता के बहुत किस्से सुनने को मिलते है ? इस पर बेडियों और हाथकड़ियों में जकड़े बाज सिंह ने कहा - मुझे बाज सिंह कहते है। यह सुनते ही बादशाह ने कहा-तुम तो बड़े बहादुर आदमी जाने जाते थे। परन्तु अब तुम से कुछ भी नहीं हो सकता। इस पर बाज सिंह ने उत्तर दिया। यदि आप मेरा करतब देखना चाहते है तो मेरी बेड़ियां खुलवा दे तो मैं अब भी आप को तमाशा दिखा सकता हूं। इस चुनौती पर बादशाह ने आज्ञा दे दी कि इसकी बेड़ियां खोल दी जाये। बाज सिंह हिलने डुलने योग्य ही हुआ था कि उसने बाज की भांति लपक कर बादशाह के दो कर्मचारियों को अपनी लपेट में ले लिया और उन्हें अपनी हथकड़ियों से ही चित्त कर दिया और वह एक शाही अधिकारी की ओर झपटा परन्तु तब तक उसे शाही सेवकों ने पकड़ लिया और फिर से बेड़ियों में जकड़ दिया गया।

तथाकथित बंदई और तत्त खालसा में मतभेद

दल खालसा के नायक जत्थेदार बंदा सिंह बहादुर तथा उनके सिपाहियों की शहीदी के पश्चात् मुग़ल प्रशासन ने बंदा सिंह के समर्थकों के साथ ही समस्त सिक्ख सम्प्रदाय को ही बागी (देशद्रोही) घोषित कर दिया। एक शाही अध्यादेश इस आशय का जारी किया गया कि जहां भी कोई सिक्ख सम्प्रदाय का व्यक्ति मिल जाये, नि:संकोच उसकी हत्या कर दी जाये। इस आदेश को क्रियात्मक रूप देने के लिए प्रत्येक सिक्ख के सिर के लिए पुरस्कार राशी निधार्रित कर दी गई। लाहौर के सूबेदार (राज्यपाल) अबदुस्समद खान की गशती सेनाओं ने सिक्खों को ढूंढ निकालने के लिए समस्त पंजाब क्षेत्र छान मारा और वन्य पशुओं की भांति उनका शिकार किया। इस समय जो सिक्ख मारे गये उनकी संख्या चौका देने वाली है। कुछ दिन अपने को सुरक्षित करने के लिए अपने परिवारों सहित सिख अपनी जन्मभूमि त्याग कर दूर-दूसरे प्रदेशों अथवा शिवालिक पर्वत माला में कहीं छिपने चले गये। यही लोग उस सामूहिक हत्या काण्डों से बच पाये।

दिल्ली में बादशाह फर्रूखसियार की हत्या के पश्चात् सन् 1718 ई० मे सत्ता परिवर्तन के बाद सिक्खों को कुछ राहत मिली। इस उथल-पुथल का लाभ उठाते हुए दूरस्थ क्षेत्र और कुछ जंगल-बीहडों व मरूभूमियों से सिक्ख धीरे-धीरे लौटने लगे। इस लम्बी अवधि में अब्दुसस्मद भी कुछ कमजोर पड़ गया था क्योंकि सिक्खों के मारने पर वह और बढ़ते थे और अधिक आतंक मचाते थे। वह थक हार गया। अधिकांश सिक्ख लोग छोटे-छोटे समूहों में संगठित हो गये थे और अपनी सुरक्षा के लिए गुरिला युद्ध का सहारा लेने लगे थे। ये बदले की भावना से शाही फौज पर समय-2 पर छापे मारने लगे थे और अत्याचारों का बदला लिए बिना नहीं रहते थे। अत: प्रशासन की इन्होंने कमर तोड़कर रख दी थी। अत: प्रशासन को भी ऐहसास हो गया कि खून का बदला खून से कभी स्थाई शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। इसलिए सिक्खों पर लगे प्रतिबन्ध धीरे-धीरे समाप्त होते गये। जैसे परिस्थितियां सामान्य हुई। धीरे-धीरे सिक्ख घरों को वापस लौट आये।

दिसम्बर 1704 में आनन्दपुर साहिब के विध्वंस के पश्चात् पंजाब में सिक्खों के लिए सब से बड़ा तीर्थ स्थल श्री दरबार साहब व अकाल तख्त ही था। क्योकि अभी केशगढ़ साहब अपने पुराने वैभव को न प्राप्त कर सका था। इसके अतिरिक्त वह स्थल काफी दूर एक कोने में होने के कारण इस समय श्री हरि मन्दिर साहब का ओर भी अधिक महत्व हो गया था क्योकि यह पंजाब के केन्द्र में विद्यमान जो है।

इन दिनों श्री दरबार साहब अमृतसर के प्रबंध के लिए कोई विशेष समिति न थी। दर्शनार्थीयों की निरंतर संख्या बड़ने से वहां की आय भी बढ़ने लगी। दल खालसा के विघटक दल वहां विद्यमान रहते थे। अत: उनकी इच्छा रहती थी कि चढ़ावे का धन उन्हें मिले ताकि वे इस धन को पुन: सैनिक गतिविधियों अथवा खालसे के उत्थान पर खर्च कर सकें। इन में दो प्रमुख गुट थे। जत्थेदार विनोद सिंह जो स्वयं को तत्व

खालसे का प्रतिनिधि बताते थे। वह चाहते थे कि सेवा का कार्यभार उनके पास रहे परन्तु उस समय यह प्रबंध सरदार अमर सिंह के हाथ में था। जिन्हें महन्ता सिंह के नाम से जाना जाता था। वह अधिकार छोडने को तैयार न थे। बस इसी बात को लेकर परस्पर मतभेद बहुत गहरा हो गया। गुटबन्दी के कारण एक दूसरे पक्ष को नीचा दिखाने के कारण सर्वप्रथम शब्दी जंग शुरू हो गई। परिणामस्वरूप एक दूसरे की भर्त्सना की गई। खेमकरण के भाई अमर सिंह विशुद्ध शाकाहारी थे। अतः इसी बात को लेकर उन्हें बन्दई खालसा के नाम से सम्बोधन किया गया, क्योकि बंदा सिंह के निकटवर्ती मांसाहार नहीं करते थे। मुख्य बात तो चढावे के धन तथा वहां पर प्रबंधक अधिकार प्राप्त करने का था परन्तु गुटबंदी एक-दूसरे को नीचा दिखाने पर उतारू हो गयी। ऐसी परिस्थितियों में सन् 1720 की दिवाली के दिन जब दोनों गुटअमृतसर पहुंचे तो उनके बीच लड़ाई की आशाएं और बढ़ गई। जत्थेदार विनोद सिंह के लड़के सरदार काहन सिंह की अध्यक्षता में दिवली का मेला लगना था और मेले में शान्ति स्थापित रखना भी उन्हीं का कर्त्तव्य था। उन्होंने झगड़ा समाप्त करने की बहुत चेष्टा की परन्तु असफल रहे। इसी बीच माता सुन्दरी जी ने, जो उस समय दिल्ली में रहती थी, भाई मनी सिंह जी को दरबार साहब अमृतसर में मुख्य ग्रंथी (महापुरोहित) के रूप में नियुक्त करके इस झगड़े को निपटाने के लिए अमृतसर भेजा। उन्होंने अमृतसर पहुंच कर दोनों गुटों के झगड़े को रोका और उन्हें परामर्श दिया कि वे परस्पर विचार विर्मश के लिए सहमत हो जाएं। उन्होंने कागज की दो पर्चियां बनाई। एक पर तत्व खालसा का नारा 'वाह गुरू जी का खालसा, वाह गुरू जी की फतेह' और दूसरी पर तथाकथित बन्दई खालसा की ओर से उनकी निशानी के रूप में नारा लिखा 'फतेह दर्शन'। शर्त यह ठहराई गई कि दोनों पर्चियों को एक ही समय दरबार साहब के सरोवर में डुबो दिया जाये। जो पर्ची पानी में डुबी रह जाये, वह अपने आप को समाप्त करके दूसरी पार्टी में मिल जाये। दोनों गुटों ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। जब पर्चीयां पानी में डुबो दी गई तो कुछ समय की प्रतीक्षा के बाद 'वाह गुरू जी का खालसा' वाली पर्ची पानी की सतह पर उभर आई। इसलिए तत्व खालसा के पक्ष में जीत की घोषणा की गई। परन्तु बहुत से तथाकथित बन्दई खालसों ने इस निर्णय को स्वीकार न किया और अपने आपको तत्व खालसा में मिलने से इन्कार कर दिया। वास्तव में वे मांस भक्षण करना नहीं चाहते थे। अंत में यह निर्णय हुआ कि अकाल तख्त के सामने दोनों गुटों के नेताओं के बीच एक कुश्ती कराई जायें। पराजित दल अपना विलेय विपक्षी गुट में कर देगा। जब ऐसा किया गया तो फिर तत्व खालसा विजयी रहा। इस पर बहुत से तथाकथित बन्दई खालसा के अधिकांश सदस्यों ने अपना गुट समाप्त कर दिया। परन्तु कुछ थोड़े से व्यक्ति ने यह निर्णय स्वीकार न किया। उन्हें हरि मन्दिर साहब की परिक्रमा से बाहर बलपूर्वक निकाल दिया गया। उनका आरोप था कि तत्व खालसा 'सरकारिया' है भाव यह लोग मुग़ल सरकार की नौकरी करते है, इसलिए इनका नियन्त्रण दरबार साहब पर नहीं होना चाहिए।